

## **Disclaimer**

Popular Science & Technology (PST) series is being published by DESIDOC to promote the knowledge and understanding of the applications of science and technology in Defence among defence personnel, students, and general public. The contents covered in each of the titles are current to the year of publication.

This title **Sagar main Sangram** was published in the year **1991**.

**For subscription details please contact:**

Director  
Defence Scientific Information &  
Documentation Centre (DESIDOC)  
Ministry of Defence, DRDO  
Metcalf House, Delhi – 110054.  
Tele: 011 – 2390 2527/29; Fax: 011 – 2381  
9151

लोकप्रिय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी क्रममाला

# सागर में संग्राम



रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केंद्र (डेसीडॉक)

रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन

रक्षा मंत्रालय, मेटकाफ हाउस, दिल्ली-110054

लोकप्रिय विज्ञान व प्रौद्योगिकी (पी.एस.टी.) क्रममाला का प्रकाशन डेसीडॉक द्वारा किया जा रहा है ताकि रक्षा-कर्मी, छात्र और सामान्य जन विज्ञान व प्रौद्योगिकी की अनुप्रयोग से परीचित हो सकें। विज्ञान व प्रौद्योगिकी के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में हो रहे नए-नए विकास कार्यों से इन वर्गों को अवगत कराना ही इस क्रममाला का उद्देश्य है। इन प्रकाशनों में सामग्रियों का प्रस्तुतिकरण काफी सरल, रोचक व गैर-तकनीकी भाषा में किया जाता है। इन पुस्तकों में कई चित्र दिए जाते हैं जिनसे विषय को सुगमतापूर्वक समझा जा सके। प्रत्येक पुस्तक किसी एक विशेष सामयिक अभिरुचि वाले विषय विधा पर केन्द्रित है।

### सम्पादकीय

मुख्य सम्पादक	एस.एस. मूर्ति
समन्वय सम्पादक	उ.रा. शर्मा
सम्पादक	अनुराधा रवि
सह सम्पादक	सुरेन्द्र सिंह बग्गा
सम्पादकीय सहायक	अनिल कुमार शर्मा
मुद्रण	अशोक कुमार एस.बी. गुप्ता
आवरण	पद्माकर मेश्राम
विक्रय व प्रचार	रविन्द्र कोहली

# सागर में संग्राम

(परिदूषण और संक्षारण के विरुद्ध)

स.सि.गंठी

वैज्ञानिक

नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला  
बंबई



रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केन्द्र  
(डेसीडॉक)

रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन

रक्षा मंत्रालय

मेटकाफ हाउस, दिल्ली-110054

## प्रस्तावना

अनुसंधान और विकास की उपलब्धियों को विज्ञान और तकनीकी से सीधा संबंध न रखने वाले विशाल जन समुदाय तक पहुँचाना एक राष्ट्रीय महत्व का कार्य है। वैज्ञानिक कार्यों की महत्ता को जन साधारण समझ सके, इस रूप में उन्हें प्रस्तुत करने से न केवल पाठकों की जानकारी बढ़ती है बल्कि उनमें एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी विकसित होता है। डेसीडॉक द्वारा गैर तकनीकी भाषा में रक्षा से संबंधित विषयों पर प्रकाशन एक सराहनीय कार्य है। प्रस्तुत पुस्तक जहाजों पर लिखी गई है।

विशाल सागर पर यात्रा करते हुए जहाजों को परिदूषण और संक्षारण दोनों शत्रुओं का एक साथ सामना करना पड़ता है। प्रस्तुत पुस्तक "सागर में संग्राम" में श्री गंटी ने समुद्र में पाये जाने वाले विभिन्न जीव जन्तुओं और इनके द्वारा जहाजों तथा सागर स्थित मानवनिर्मित विभिन्न संरचनाओं पर होनेवाली क्षति का विस्तृत वर्णन किया है। इन भयानक शत्रुओं से जहाजों की रक्षा के लिए अपनाये गये तरीके के फलस्वरूप, विकसित हुए विभिन्न रासायनिक पेन्टों का भी उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार संक्षारण का भी सभी धातुओं पर आक्रमण होता है। संक्षारण से बचाव के लिए प्रयुक्त की जाने वाली तकनीकों के विकास की कहानी भी अत्यंत रोचक बन पड़ी है। प्रस्तुतीकरण पूर्णतया जन साधारण को ध्यान में रखकर सरल व गैर तकनीकी भाषा में किया गया है और इस संबंध में विभिन्न चित्रों से विषय को समझने में काफी सहायता मिलेगी। इस क्षेत्र में नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला द्वारा किये गये अनुसंधान और विकास कार्य को समुचित दर्शाया गया है।

मुझे आशा है कि यह पुस्तक पाठको में वैज्ञानिक अभिरुचि और उत्सुकता को जगायेगी, इस विषय में ज्ञानवर्धक सिद्ध होगी और इस प्रकार जन साधारण में रक्षा विज्ञान संबंधी विषयों के प्रति जागरुकता और उत्साह उत्पन्न करने के अपने लक्ष्य को पूरा करेगी।



(डा. आर. कृष्णन्)

बम्बई  
मई, 1988

निदेशक, नौ.रा.धा.प्र.

## समर्पण

मेरी यह पुस्तिका नौ.रा.धा.प्रा. के भूतपूर्व निदेशक श्री चित्त प्रसाद डे को तथा इस प्रयोगशाला के अन्य सेवानिवृत्त वैज्ञानिकों को, जिनके महत्वपूर्ण अनुसंधानों के फलस्वरूप इस की लेखन सामग्री जुट सकी है, को सादर समर्पित है।

## आभार

मेरी अंग्रेजी पुस्तिका “**Battle with Barnacles**” के प्रकाशित होने के बाद उसी विषय पर हिन्दी में लिखने के लिये प्रोत्साहित करने के लिये, मैं अपनी प्रयोगशाला के निदेशक डॉ आर कृष्णन् का हृदय से आभार मानता हूँ। डॉ. नागेन्द्र नाथ पाण्डेय ने, जो केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, बम्बई के संयुक्त निदेशक हैं, संपादकीय दृष्टिकोण से इस पुस्तक को जो परखा है उसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। अपने मित्र तथा सहकर्मी डॉ रवि श्रीवास्तव तथा श्री धीरेन्द्र कुमार के प्रति उचित मार्गदर्शन देने के लिये आभार प्रदर्शित करता हूँ। मेरे गुरुवर तथा सहकर्मी डॉ अशोक करंडे का भी मैं आभारी हूँ। डेसीडॉक के प्रकाशन वर्ग के अनेक सदस्यों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने बार-बार मेरा हौसला बढ़ाया तथा इस पुस्तक को पूरा करने में मुझे सहायता दी।

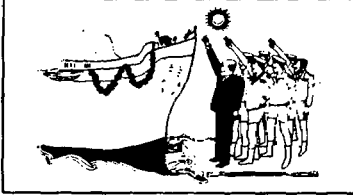


# विषय सूची

प्रस्तावना	iii
भाग 1: परिदृषण	
1 बार्नेकल का बहादुरी से मुकाबला	1
2 संगठित सैनिकों की सेना	12
3 कोलम्बस से क्यूप्रिक ऑक्साइड तक	30
4 हल डूढना है मुश्किल	38
5 पश्चिमी कमान	42
भाग 2: संक्षारण	
6 आंतरिक शत्रु	59
7 जंग की वीर गाथा	67
8 बार्नेकल से जंग जारी है	85

युद्ध परिदूषण के विरुद्ध

## बार्नेकल का बहादुरी से मुकाबला



### बार्नेकल की पहचान

### अब और ज्यादा आसान

अत्यंत प्राचीन काल से ही सागर के जीवों और मनुष्य के बीच एक संघर्ष चल रहा है। यह उस दिन ही आरम्भ हो गया था जब मनुष्य ने सागर में अपनी पहली नौका उतारी थी। अनेक शताब्दियों से जारी संघर्ष का अंतिम निर्णय अब भी होना बाकी है।

सागर में अनेक किस्मों के पौधे और जन्तु मिलते हैं। वे चट्टानों पर अपना अड्डा बना लेते हैं, किनारों से चिपक जाते हैं और साथ ही मानव निर्मित संरचनाओं जैसे जलयान, युद्धपोत इत्यादि को अपना घर बना लेते हैं। अनेक सूक्ष्म जीव जल जहाजों की तली की निचली सतह पर चिपक जाते हैं। इनके चिपकने की इस घटना को वैज्ञानिक "परिदूषण" (फाउलिंग) की संज्ञा देते हैं और इन जीवों के समुदाय को "परिदूषक समुदाय" (फाउलिंग कम्युनिटी) कहते हैं।



ऐसा जहाज़ जिसका पेन्दा परिदूषित हो गया हो, युद्धोपयोगी नहीं रह जाता। परिदूषित करने वाले जीव अत्यंत धूर्त होते हैं। वे जहाज़ पर अनेक प्रकार से आक्रमण करते हैं। अपनी चतुर व्यूह रचना तथा तीक्ष्ण बेधन क्षमता के फलस्वरूप, वे युद्धपोतों के मोटे-मोटे कवचों में भी प्रवेश कर जाते हैं और सर्वाधिक शक्तिशाली युद्धपोतों की कार्यक्षमता का भी ह्रास कर देते हैं।

इस परिदूषक समुदाय का नेता है अस्थिविहीन बार्नेकल। जल जहाज़ का परिदूषण उस समय तक गंभीर रूप धारण नहीं करता जब तक उसमें बार्नेकल हिस्सा नहीं लेता। इस प्रकार यद्यपि सब प्रकार के जीवों के परिदूषणों का मुकाबला करना जरूरी है पर वास्तविक संघर्ष मुख्य रूप से बार्नेकल से ही करना पड़ता है।

### मात देने वाली मोर्चाबन्दी

नौसेना का वास्तुशिल्पी युद्धपोत की हर रेखा और वक्र को डिज़ाइन करने में ड्राइंग बोर्ड पर अपना सम्पूर्ण जीवन बिता देता है। वह जो डिज़ाइन बनाता है उसे इंजीनियर, एक ऐसे सुन्दर सुप्रवाही पोत में जो अधिकतम गति से सागर पर विचरण कर सकता है, रूपांतरित कर देता है। परन्तु उनके सब प्रयास उस समय एक दम व्यर्थ हो जाते हैं जब सागर के सबसे सरल और हानिरहित प्रतीत होने वाले सूक्ष्म जीव—बैक्टीरिया और डायएटम—उसके अवतरण के एक दिन बाद ही उसके पेन्डे पर अवपंकी परत बनाने लगते हैं। इस प्रकार की अवपंकी परत पोत की गति में, अनुमान से छह गुना अधिक बाधा उत्पन्न कर देता है। और जब पोत के पेन्डे पर बार्नेकल तथा अन्य परिदूषक सूक्ष्म जीव अपना अड्डा जमा लेते हैं तब यह बाधा कई गुना अधिक बढ़ जाती है।

परिदूषण के कारण उत्पन्न होने वाले घर्षणीय बाधा का सबसे पहला, पर सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है जहाज़ की गति पर। वह कम हो



चित्र 1. सागर की लहरों पर तैरता हुआ युद्धपोत

जाती है। परिदूषण के फलस्वरूप विभिन्न वर्गों के युद्धपोतों की गति में 1.5-2.0 नॉट की कमी होती पायी गई है। फलस्वरूप ईंधन की खपत भी बहुत बढ़ जाती है। विचित्र बात यह है कि यह खपत परिदूषण के विस्तार के अनुपात में कहीं और अधिक बढ़ जाती है। छोटे आकार के विध्वंसक (डेस्ट्रॉयर) जहाज़ को परिदूषण के कारण दस नॉट की अपनी सामान्य गति बनाये रखने के लिए 50 प्रतिशत तक अधिक ईंधन खर्च करना पड़ता है। पर ईंधन की खपत की यह बढ़त शीतोष्ण सागरों के लिए है। उष्ण कटिबंधी के सागरों में जहां परिदूषण अत्यधिक मात्रा में होता है, घर्षणीय रोध में होने वाली वृद्धि कहीं अधिक होती है। इसलिये उनमें ईंधन की खपत और अधिक बढ़ जाती है। जहाज़ की गति उसके नोदक बल पर निर्भर होती है। व्यवहार में इस बल का अनुमान शाफ्ट अश्व



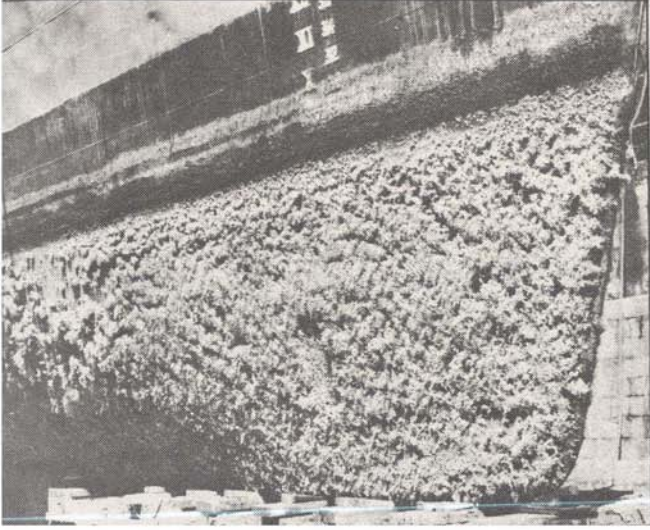
शक्ति (शाफ्ट हार्स पावर) से लगाया जाता है। आमतौर से वास्तविक अश्वशक्ति (इफैक्टिव हार्सपावर - ई.एच.पी.) शाफ्ट अश्व शक्ति की 75 प्रतिशत ही होती है। अनुमानित और वास्तविक अश्वशक्ति के बीच का यह अंतर प्रापेलरों के प्रक्षोभ (टरबुलेंस) के कारण होता है।

परिदूषण से जहाज़ की शक्ति का हास हो जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में किये गये प्रयोगों में पाया गया है कि सागर में उतारने के आठ महीनों के बाद जहाज़ को चौदह नॉट की गति प्राप्त करने में आरंभिक शाफ्ट शक्ति की तुलना में दुगनी शक्ति की जरूरत होने लगती है। इस अधिक शाफ्ट शक्ति की आवश्यकता का कारण है परिदूषण।

प्रोपेलरों का परिदूषण, नौसेना के वास्तुशिल्पियों की कठिनाइयों में बहुत वृद्धि करता है। इसी वजह से एक ब्रिटिश जहाज़ तो परीक्षण के दौरान भी अनुमानित गति प्राप्त नहीं कर सका। अनुमान लगाया गया है कि ईंधन की खपत में होने वाली 2/3 वृद्धि केवल प्रोपेलरों के परिदूषण के प्रभावस्वरूप होती है। पानी में उतारने के केवल सात महीनों के बाद ही जहाज़ की ईंधन की खपत में 115 प्रतिशत तक वृद्धि होती पायी गयी है।

## सागर के सुरंगों पर कहर

हर देश अपने तटीय सागरों की शत्रु से रक्षा करने के लिये तटों के निकट विस्फोटक सुरंगें बिछा देता है। ये सुरंगें जो एक ही स्थान पर पड़ी रहती हैं, सागर में इतनी गहराइयों पर रखी जाती हैं कि शत्रु के जहाज़ों को बिना चेतोवनी के उड़ा सकें। इन गहराइयों के बारे में पहले से ही हिसाब लगा लिया जाता है और शत्रु-जहाज़ों को नष्ट करने की दृष्टि से ये गहराइयां महत्वपूर्ण होती हैं। पर ये सुरंगें बहुत जल्दी ही परिदूषित हो जाती हैं जिसके कारण वे छद्मावरित (कैमोफ्लेज्ड) हो जाती हैं। इससे सुरंग बिछाने वालों को बहुत हर्ष होता है क्योंकि वे भी चाहते हैं कि



चित्र 2. बार्नेकल परिदूषित युद्धपोत

सुरंगें शत्रु पक्ष को दिखाई न दें। परन्तु कुछ दिन बाद ही यह हर्ष, अवसाद में बदल जाता है। सुरंगों पर जमने वाले परिदूषक जीवों की आबादी समय के साथ निरंतर बढ़ती रहती है जिससे सुरंगों का वजन बहुत बढ़ जाता है और उन स्थानों से जिन पर वे मूल रूप से तिराई गयी थी और गहराई पर चली जाती हैं। इसके नतीजे दुःखद होते हैं। यद्यपि परिदूषक जीवों के जमने से सुरंगें बहुत सुन्दर दिखने लगती हैं और परिदूषण के अध्ययन के लिये बहुत उपयुक्त वस्तुयें बन जाती हैं पर सुरंग के रूप में उनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है।



## सुरक्षा के संकेतों पर भी खतरे का साया

तटों पर आमतौर से नौ संचालन बोया तिरते रहते हैं। ये बोया इस प्रकार बंधे होते हैं कि स्थायी रूप से एक स्थान पर तिरते रहें और जल जहाजों को ट्रैफिक संकेत देते रहें। वास्तव में इनका काम पानी के नीचे छिपी चट्टानों तथा अत्याधिक उथले तटों से जहाजों को बचाना होता है।



**चित्र 3.** सुरक्षा के संकेत देने वाले बॉय भी स्वयं असुरक्षित

इसलिये इन को उस समय तक तिरते रहना पड़ता है जब तक उन्हें नये बोया द्वारा विस्थापित नहीं कर दिया जाता। इन को भी विभिन्न गहराइयों पर रखा जाता है। सुरंगों की भांति ही बोया भी परिदूषण के शिकार हो जाते हैं। इनकी स्थितियों के अनुसार इन पर जल्दी या देर से, मोटी या पतली परिदूषक परतें जम जाती हैं। इन परतों के फलस्वरूप





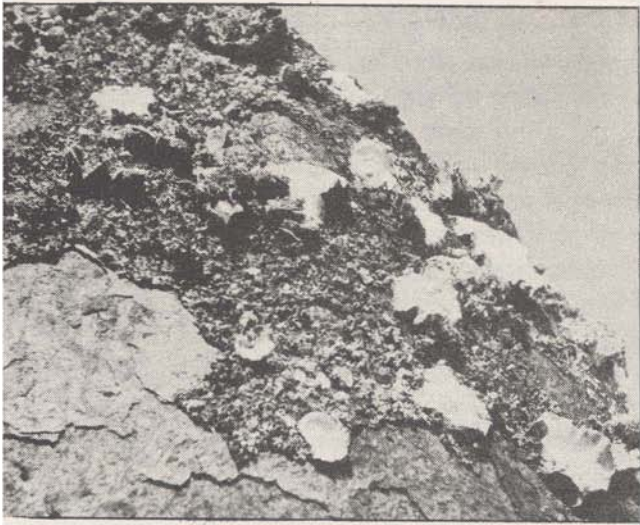
इनका वजन बढ़ जाता है। इससे बोया को तिरते रहने के लिये बहुत अधिक उत्प्लावकता (बॉयेंसी) की आवश्यकता होती है। पर उत्प्लावकता को बढ़ाना आसान नहीं होता।

पानी के नीचे उत्पन्न होने वाली ध्वनियों को अंकित करने के लिये विशेष उपकरणों का उपयोग किया जाता है। व्यापारिक जहाजों पर आमतौर से ध्वनिक युक्तियां (सोनिक साउंडिंग डिवाइसेज़ डोम) होते हैं। ये युक्तियां भी परिदूषित हो जाती हैं।

ध्वनिक उपकरण के परिदूषण के परिणाम बहुत भयंकर होते हैं क्योंकि उससे अवांछित ध्वनियां उत्पन्न होने लगती हैं। ये ध्वनियां शत्रु के जहाजों द्वारा उत्पन्न ध्वनियों को सुनने में बाधा डालती हैं। बार्नेकल के प्रच्छद (ओपरकुलुम) तथा आयस्ट्रों या मसलों के खोलों के खुलने और बंद होने से इतना शोर पैदा होता है कि शत्रु के जहाजों द्वारा पैदा होने वाली ध्वनियां दब जाती हैं। इसलिये शत्रु के जहाजों का पता नहीं चल पाता।

सोनार पराश्रव्य तरंगों को उत्पन्न और ग्रहण करने के सिद्धान्त पर कार्य करता है। ये तरंगें जलमग्न वस्तुओं की सतहों से टकराकर परावर्तित होती हैं। परिदूषक जीवों के चूनेमय और सिलिका युक्त खोलों का घनत्व और प्रत्यास्था अर्थात् लचीलापन जल से अधिक होता है। वे सोनार डोम पर तह जमाकर उसकी प्रभावी मोटाई को बढ़ा देते हैं। परिणामस्वरूप, डोम पराश्रव्य तरंगों को अधिक मात्रा में परावर्तित करने लगता है और कम मात्रा में ग्रहण करता है। इस प्रकार जलमग्न वस्तुओं से उत्पन्न होने वाली ध्वनि छद्मावरित हो जाती है।

आज सागर में से अधिकाधिक तेल निकालने के लिये, हर देश प्रयत्नशील है। इसलिये हर सागर में तेल रिगों की संख्या बढ़ती जा रही है। साथ ही इन रिगों की परिदूषित होने की घटनायें भी बढ़ती जा रही हैं। वास्तव में बार्नेकल का एक ही नारा है—“कोई भी सतह जिस पर पेन्ट हो सकता है, हमारे जमने के लिये उपयुक्त है।” इसलिए रिगों पर,



चित्र 4. अति परिदूषित बॉय का एक भाग

बार्नेकल परिदूषण की परतें जमती ही जाती हैं। इससे रिगों को भारी क्षति पहुंचती है और उनके जलमग्न हिस्सों की मजबूती के बारे में लगाये गये अनुमान अत्यंत भ्रामक सिद्ध होते हैं। ये हिस्से अनुमान से कहीं अधिक कमजोर हो जाते हैं।

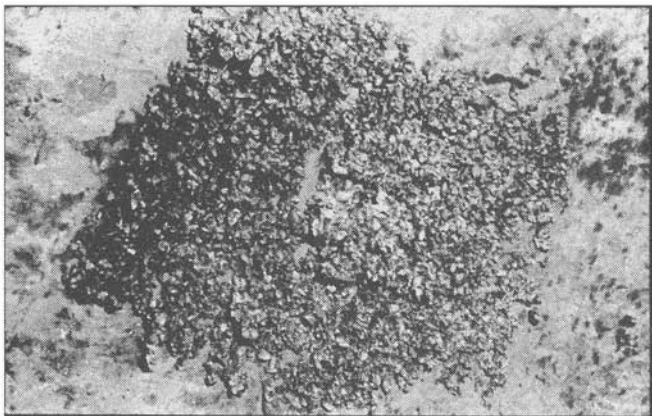
जलमग्न सतहों पर समुद्री जीवों के अड्डा बना लेने से उनका आयसन बढ़ जाता है। इसका कुप्रभाव जलमग्न संरचनाओं के गुण धर्मों पर पड़ता है। जिससे इन संरचनाओं का वज़न बढ़ जाता है। यद्यपि इस प्रकार की संरचनाओं के परिदूषण की सीमा के बारे में, हमें अब भी पर्याप्त ज्ञान नहीं है पर इतना निश्चित है कि समुद्र में स्थित कोई भी संरचना परिदूषण से बच नहीं पाती।



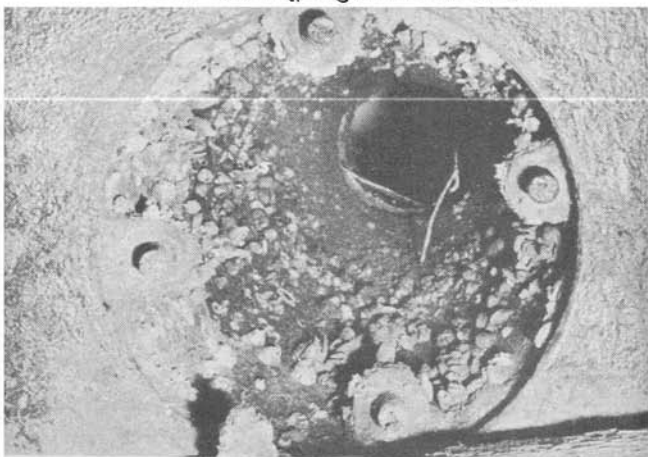
**चित्र 5. सागर मंथन के लिए आधुनिक सागर-सम्राट'  
सागर के जल पर प्रतिबंध की मुहर**

बार्नेकल, हरी मसल, ओएस्टर, हाइड्राइड, ट्यूबवर्म जैसे परितूषक जीव उन मार्गों पर सहज ही अपना अड्डा बना लेते हैं जिनसे समुद्री पानी जहाजों में भेजा जाता है। ऐसे मार्गों पर ये काफी अधिक पैदा होते हैं। यदि मार्ग में से पानी के बहने के दौरान परितूषक जीवों को हटाया जाता है, तब भी वे वॉल्वों और छिद्रों पर जम जाते हैं तथा पानी के प्रवेश को एकदम रोक देते हैं।

उन परमाण्विक और ताप बिजलीघरों में जिनमें उपकरणों को ठंडा करने के लिये समुद्री पानी का उपयोग किया जाता है, जल प्रवेश सुरंगों



चित्र 6. मसल परिदूषित युद्धपोत का जल प्रवेश द्वार

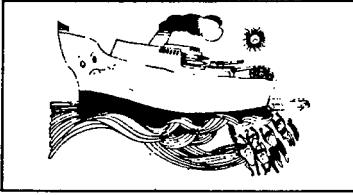


चित्र 7. बार्नेकल परिदूषित जल प्रवेश द्वार का भीतरी द्वार



के परिदूषित हो जाने से समस्या कई गुना अधिक गंभीर हो जाती है। इन सुरंगों में परिदूषण बहुत बड़ी मात्रा में होता है। न्यू इंग्लैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका के एक बिजली घर में एक वर्ष के दौरान हटाये गये परिदूषक जीवों का वजन 266 टन था। एक अन्य बिजली की सुरंग में मृत खोलों की 3 से 6 फुट मोटी तह जम गई थी। एक बिजली कंपनी ने अपनी सुरंग में, 6 महीने से भी कम समय में हरी मसलों की छह इंच मोटी तह जमा पायी।

इस प्रकार के परिदूषणों की सूची बहुत लम्बी है। पर संक्षेप में इतना कहा जा सकता है कि जल प्रवेश सुरंगों आदि के परिदूषित हो जाने से बिजली घर, आदि "प्यासे" मर जाते हैं।



## संगठित सैनिकों की सेना

नाविक की शत्रु है परिदूषक जीवों की सेना। यह सेना कदाचित उतनी ही संगठित है जितनी संसार की कोई भी आधुनिक सेना। विशेष रूप से आधुनिक न होते हुये भी परिदूषक समुदाय की यह सेना आसानी से तीन मुख्य वर्गों में वर्गीकृत की जा सकती है: पैदल सेना, अश्व सेना और तोपखाना। पैदल सेना में बैक्टीरिया, डायएटम, प्रोटोजोआ, शैवाल और ब्रायोजोआ जैसे सैनिक शामिल होते हैं जो सबसे पहले शत्रु का मुकाबला करते हैं। परिदूषक जीवों की अश्व सेना के सदस्य सी-एनीमोन, हाइड्राइड और ट्यूनीकैट होते हैं, और तोपखाने के सशस्त्र वाहन बनाते हैं, मसल, बार्नेकल और ट्यूबवर्म।

### प्राथमिक परत यानी पैदल सेना

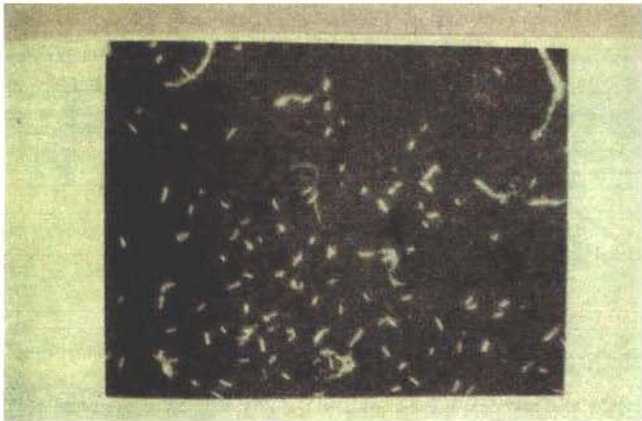
परिदूषक जीवों का यह सबसे बड़ा अकेला सैन्य दल है। इसमें मुख्य रूप से सूक्ष्मदर्शी जीव बैक्टीरिया, डायएटम, एककोशिक शैवाल, प्रोटोजोआ और ब्रायोजोआ होते हैं। यद्यपि आकार में ये छोटे हैं, पर इनकी संख्या अन्य सब जीवों से कहीं अधिक होती है।



जलयान की सतह पर अड़्डा जमाने में कदाचित सबसे अग्रणी होते हैं बैक्टीरिया। समुद्री जल में डूबी हुई किसी सतह पर आधा घंटे के अंदर ही वे अपनी परत जमा लेते हैं। उनके शीघ्र बाद आते हैं डायएटम जो समुद्री जल में उतनी ही बहुतायत से पाये जाते हैं जितने बैक्टीरिया। ये बैक्टीरिया के साथ मिल कर एक परत बना देते हैं जिसे आमतौर से "प्राथमिक परत" कहा जाता है। बैक्टीरिया और डायएटम की यह प्राथमिक परत अपनी संरचना को निर्जीव कार्बनिक और अकार्बनिक परत (डेट्रीटस), कीचड़, रेत और बिखरे हुये कणों से सुदृढ़ बना लेती है। इस प्रकार प्राथमिक परत में लगभग 20 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ, 60 प्रतिशत अधुलनशील राख और बाकी समुद्री जल से निक्षेपित लवण होते हैं।

### बैक्टीरिया

जलयान की सतह से चिपकने के लिये बैक्टीरिया अनेक चिपकने वाले रज्जुक (स्ट्रॉंड) पैदा कर लेते हैं। इन रज्जुओं में वानीसैकेराइड होते हैं। बैक्टीरिया की वंश वृद्धि इतनी तेजी से होती है कि सतह पर उनकी आबादी हर चार घंटे बाद दुगनी हो जाती है। परिदूषित सतहों से सैंतीस किस्मों के बैक्टीरिया बिलगाये जा चुके हैं। इनमें से 70 प्रतिशत में सतहों से चिपकने की क्षमता पायी गयी है। परिदूषक समुदाय में बैक्टीरिया वाली परत के मुख्य कार्य हैं (1) उच्च वर्ग के परिदूषक जीवों के लिये आकर्षण प्रदान करना; (2) जलयान की सतह पर किये गये पेन्ट के विषैले प्रभावों को समाप्त करना अथवा पेन्ट की परत को नष्ट करना; और (3) नाजुक समुद्री जल-द्रवण व्यवस्था (सी वाटर कन्डेन्सर सिस्टम) में ऊष्मा-ह्रास (थर्मल डिफे) करने वाले कारक की भांति कार्य करना। हाल के वर्षों में विकसित सागर से बिजली उत्पन्न करने हेतु ओटेक (ओ टी ई सी ओशन एनर्जी थर्मल कन्वरज़न) प्राविधि में समुद्री जल-द्रवण व्यवस्था का बहुत महत्व होता है।



चित्र 8. बैक्टीरिया पैवस सेना का कई गुना बड़ा चित्र माइक्रोस्कोप से देखने पर

ओटेक विधि में सागर के विभिन्न जल स्तरों के तापों में अंतर का उपयोग करके बिजली बनायी जाती है। अनेक स्थानों पर विशेष रूप से गर्म प्रदेशों में, सागर की सतह के जल के ताप और गहरे जल के ताप में काफी अंतर होता है। यह अंतर 10° से 20° सेंटीग्रेड तक हो सकता है। बिजली उत्पन्न करने के लिये इस तापांतर का उपयोग किया जाता है। ऊष्मा के ह्रास से यह तापांतर घट जाता है जिसका कुप्रभाव विद्युत उत्पादन पर पड़ता है। बैक्टीरिया वाली परत ऊष्मा का ह्रास करती है। इसलिये ओटेक व्यवस्था में इस बैक्टीरिया वाली परत को न बनने देना या उसे हटा देना बहुत जरूरी होता है।



### हायएटम

बैक्टीरिया की भांति ही हायएटम भी सूक्ष्मजीव हैं, परन्तु आकार में वे बैक्टीरिया से काफी बड़े होते हैं। बैक्टीरिया परपोषी होते हैं। अतः अपना भोजन बनाने के लिये वे जलयान की सतह पर मौजूद कार्बनिक पदार्थों का उपयोग करते हैं। इसके विपरीत हायएटमों में क्लोरोफिल मौजूद होता है, इसलिये वे प्रकाश की उपस्थिति में अपना भोजन स्वयं बना लेते हैं। कम गहरे सागरों में हायएटमों की संख्या में होने वाली वृद्धि का कारण मुख्य रूप से प्रकाश की उपलब्धता है।



चित्र 9. हायएटम समुदाय—पैबल सेना के सहस्य

हायएटमों की भित्तियां सिलिकन की बनी होती हैं। इसलिये वे अधिकांश सांद्र अम्लों के प्रतिरोधी होते हैं। हायएटमों की परत उन पेन्टों से जो जलयानों की असमग्न सतहों पर किये जाते हैं, स्वकित होने वाली टॉक्सिनों के फैलने में बाधक होती है। हायएटमों की परत जलयान की सतह के विषैलेपन को कम कर देती है और, इस प्रकार और अधिक परिदूषित होने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त अनेक हायएटम

प्रजातियां अन्य परिदूषकों के लिये चारे का काम करती हैं। अनेक परिदूषक जीवों की आंतों में उपस्थित सामग्री का विश्लेषण करने पर उनमें कम से कम 25 किस्मों के हायएटम पाये गये। इनमें हायएटमों की पोषकता का पता चलता है। यद्यपि हायएटम बहुत हानिकारी प्रदूषक नहीं हैं पर वे सतह पर बाद में जमने वाले परिदूषकों के लिये पूर्वगामी जीवों का कार्य करते हैं।

### प्रोटोजोआ

ये एककोशिक जीव सूक्ष्म जन्तु हैं जो जन्ममग्न मतहों पर मिलते हैं। यद्यपि ये बाद में होने वाले परिदूषण में से कोई महत्वपूर्ण योग नहीं देते, पर वे परिदूषक समुदाय के सदस्य हैं। संख्या में वे बैक्टीरिया या हायएटम से कम होते हैं, पर पक्की तौर से जमने के लिये ये प्राथमिक परत का उपयोग करते हैं।

### ब्रायोजोआ

सुन्दर ब्रायोजोआ युद्ध करने वाली बार्नेकल सेना के बहादुर जल-इस्यु होते हैं। वे बहादुर हैं क्योंकि वे तांबा-आधारित पेन्टों की विषालुता का डटकर मुकाबला करते हैं। यह गुण अधिकांश परिदूषक जीवों में नहीं होता। वास्तव में इन प्रजातियों को अनेक बार "तांबा-प्रेमी जीव" के नाम से भी पुकारा जाता है।

विकास के क्रम में ब्रायोजोआ निम्न कोटि के जीव हैं और वे पालीजोआ के नाम से भी जाने जाते हैं। समुद्री ब्रायोजोआ की 3000 प्रजातियां हैं और इनमें से कम से कम 150 प्रजातियां जलमग्न सतह को परिदूषित करती पायी गई हैं। ब्रायोजोआ उपनिवेश बनाने वाले जीव होते हैं। ये उपनिवेश प्रभावित सतह के एकदम ऊपर, स्पष्ट धब्बों में, पपड़ी के रूप में अथवा झाड़ी या वृक्ष की आकृतियों में बनते हैं।

ब्रायोजोआ उपनिवेश को देखकर साधारण व्यक्ति उसकी पंखानुमा



चित्र 10. "तांबा-पेसी जीव" ब्रायोजोआ समुदाय

आकृति के कारण उसे कोरल समझ बैठते हैं। वृद्धि करने के गुणों के आधर पर ब्रायोजोआ पपड़ी बनाने वाले या ऊर्ध्व, चूनेदार अथवा भूस्तारी कहलाते हैं।

अमेरिकी सागरों में पाये जाने वाले ब्रायोजोआ, वाटरसिपोस कुकुलाटा ताम्र-विषालुता के प्रति सर्वाधिक रोधी जीव समझे जाते हैं। इसलिये ब्रायोजोआ के साथ लड़ते समय भिन्न बुद्धनीति की आवश्यकता होती है। उनकी विषों के प्रति सहनशीलता के बारे में जानने के लिये उनका और अधिक अध्ययन करना पड़ेगा।

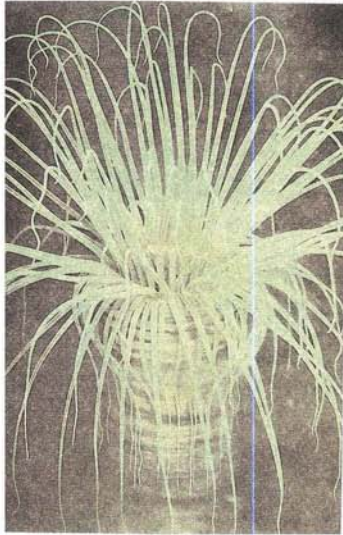
### घुस्त-घुस्त, आकर्षक अश्वसेना

परिवृषक समुदाय की अश्वसेना में सी-एनीमोन, हाइड्राइड और एसीडियन अथवा ट्यूनीकेट शामिल होते हैं।



### सी एनीमोन

किसी भी एक्वेरियम में सी-एनीमोन आकर्षण के केन्द्र होते हैं। वे अधिकांश मछलियों की तुलना में, अधिक दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। देखने में वे अत्यंत सुन्दर और लुभावने होते हैं। पानी में उगने पर सी-एनीमोन अपना आकर्षक रंग दर्शाता है। यह बहुत सुन्दर दिखता है और इसे देखकर सूरजमुखी के फूल के पुष्प-क्रम की याद आ जाती है।



चित्र 11. रंग-विरंगे सी अनिमोन – सागर के सूरजमुखी

पर परिदूषण फैलाने में एनीमोन दुर्भाग्यवश, एक आफत होता है, विशेष रूप से नौचालन बाँयों, समुद्री जल के प्रवेश स्थलों, सुरंगों, आदि

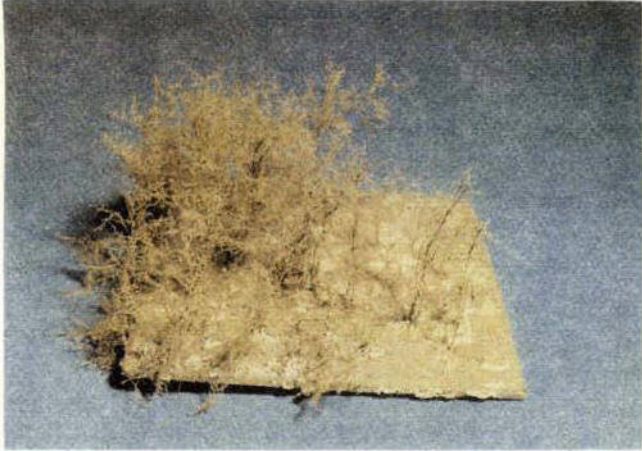
के लिये। सी-एनीमोन जब तक पानी में रहता है उसका आकार फूल जैसा होता है, लेकिन एक बार पानी में से बाहर निकल जाने पर वह मुष्किल से एक-दो सेन्टीमीटर व्यास की छोटी गेंद के रूप में सिकुड़ जाता है। जलमग्न सतहों पर अपनी आघारी डिस्क की मदद से उसकी चिपकने की क्षमता इतनी अधिक होती है कि उसे छुड़ाना आसान नहीं होता। उसे छुड़ाने में उसके शरीर की लोच कठिनाई उत्पन्न करती है। सी-एनीमोन के बच्चे मुक्त रूप से विचरण करने वाले सार्वे होते हैं जो इस अवस्था में 90 दिनों तक भी रह सकते हैं। इस प्रकार परिदूषक समुदाय की यह अश्व सेना उस वक्त तक विचरण करती रहती है, जब तक उसे चिपकने के लिये कोई उपयुक्त सतह नहीं मिल जाती।

### हाइड्राइड

ये भी सी-एनीमोन ही होते हैं, परन्तु ये अकेले नहीं रहते, वरन् अपने उपनिवेश बनाते हैं। ये उपनिवेश विभिन्न किस्मों की सतहों पर बना सकते हैं। वास्तव में उनके आक्रमण से कोई भी सतह बच नहीं पाती। अनेक परिस्थितियों में परिदूषक समुदाय में हाइड्राइड वृक्ष-सदृश्य आकृति के उपनिवेश ही प्रमुख होते हैं। टुबुलेरिजा हाइड्राइड के उपनिवेश 6 से 12 इंच तक लम्बे हो जाते हैं। वे घने जंगल हो जाते हैं। ये जंगल कीचड़ और सिल्ट के जमने के लिये बहुत ही उपयुक्त स्थल बन जाते हैं।

औपनिवेशिक हाइड्राइड का जीवन चक्र एनीमोन से भिन्न होता है। इनके बच्चे क्षुद्र जैसी विश सद्रूप्य, सागर पर तिरते हुये चिपकने के लिये उपयुक्त सतह की खोज करते रहते हैं। वे ताम्र विषालुता के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं और जलमग्न सतहों पर उस समय तक नहीं चिपकते जब तक कि अधिक रोधी जीवों द्वारा वह विषालुता कुछ हद तक समाप्त नहीं कर दी जाती।

अपनी घनी, औपनिवेशिक वृद्धि के फलस्वरूप वे उस सतह के वजन को, जिस पर वे चिपकते हैं, काफी बढ़ा देते हैं। समझा जाता है कि वे



चित्र 12. वृक्ष मनुष्य हाइड्राइड

सतह के प्रति वर्ग मीटर के वजन में कई किलोग्राम की वृद्धि कर देते हैं। हाइड्राइड की अधिकांश जातियां परिदूषक होती हैं। ये जातियां सब सागरों में पायी जाती हैं और सबसे बड़ी आफत समझी जाती हैं।

### द्यूनीकेट

द्यूनीकेट या एसीडियन मृदु शरीर वाले जीव हैं। वे अकेले भी रह सकते हैं और उपनिवेश बना कर भी। कदाचित वे मनुष्य के दूरस्थ पूर्वज थे क्योंकि वे ही पहले ऐसे प्राथमिक जीव थे जिनके शरीर में मेरुरज्जू थी। परन्तु उनकी परिदूषण क्षमता दुर्भाग्य से मनुष्य के हित में एकदम नहीं है। ये लगभग हर जलमग्न सतह पर, चाहे वह स्थिर हो या गतिवान, अपना अड्डा जमा सकते हैं।





चित्र 13. मेकडम्ब धारी एकीदिवल

यद्यपि जलमग्न सतहों पर जमने वाले सब जीवों में इनकी संख्या सबसे अधिक होती है, पर ये उस समय तक हानिकारी सिद्ध नहीं होते जब तक कि सतह पर चढ़ायी गई सुरक्षात्मक परत के विषैले प्रभाव कम नहीं हो जाते। साथ ही ये जीव मीसमी हैं और सागर के जल के गुणों में परिवर्तनों के प्रति कम सहनशील भी। मीसमों के बदलने के फलस्वरूप सागर के जल के गुणों में परिवर्तन होने से ये मर जाते हैं। पर मरने के बाद भी अपनी कलिकायें पीछे छोड़ जाते हैं जो अनुकूल मौसम आते ही पुनः जीवित हो जाती हैं। यद्यपि उन्हें परिदूषक समुदाय की अस्थ सेना कहा जाता है, पर ये हमारी ऊंट सेना से अधिक मिलते हैं। ऊंटों की भांति ही ये जीव भी अपने शरीर में पानी भंडारित कर लेते हैं। जब कोई इन्हें छेड़ता है तब ये भंडारित पानी उगल देते हैं। इनके शरीर की प्रतिरक्षा व्यवस्था बलवान् मनुष्य के साधनों के प्रति सर्वाधिक सुदृढ़ होती है।



## इस सेना में तोपखाना भी

आधुनिक युद्ध की मशीनें हैं प्रमुख युद्धक टैंक (मैन बैटल टैंक— एम.बी.टी.), परिदूषक समुदाय की तोप सेना में भी 'एम.बी.टी.' होते हैं। ये हैं मसल, बार्नेकल और ट्यूबवर्म। इन तीनों जीवों में एक अंग की संरचना एक जैसी ही होती है। यह अंग है इनका केल्सियम कार्बोनेट का कवच (खोल)। वैसे इस कवच की परतों की मोटाई हर वर्ग अथवा दल के जीव के साथ बदलती रहती है।

### मसल

मसल उन सीपियों के ही रूप हैं जिन्हें देखते ही बावर्चियों और स्वादिष्ट भोजन के शौकीन लोगों के मन खिल उठते हैं और जिनमें वे मोती पाये जाते हैं जो महिलाओं के गलों की शोभा बढ़ाते हैं। पर वे नाविकों की मुसीबतों का एक मुख्य कारण भी हैं। अपने अनेक रूपों में, मसल उन सब सतहों पर अपना अड्डा जमा लेती हैं जो समुद्री जल में डूबी होती हैं। समुद्री जल के प्रवेश द्वार अथवा बिजली घरों की वे सुरंगें जिनमें समुद्री जल अंदर आता है, इनके जमने के प्रिय स्थल हैं। मसल समूह में हरी खाद्य मसल और ओएस्टर शामिल होते हैं, पर परिदूषण उत्पन्न करने का कार्य मुख्यतः छोटी मसल यथा *माडिओलस* और *माइटिलोप्सिस* ही करती हैं।

भारतीय बंदरगाहों, विशेष रूप से विशाखापत्तनम में बहुतायत से पैदा होने वाली किस्म *माइटिलोप्सिस सल्लाई* एक आप्रवासी किस्म है। हमारे जलपोतों की जलमग्न रहने वाली सतहों पर *माइटिलोप्सिस* इतनी अधिक मात्रा में चिपक जाती है कि विशाखापत्तनम के हिन्दुस्थान शिपयार्ड को इन्हें छुड़ाने के लिये बकट क्रनों का इस्तेमाल करना पड़ता है। जैसे ही जलपोत शुष्क गोदी (ड्राई डॉक) में पहुंचता है, उस पर से कई टन मसल छुड़ानी होती है क्योंकि मसल पोत के जलमग्न रहने वाली





चित्र 14. सीप सदृश्य मसल

सतह पर बड़ी मात्रा में जम जाती है। यहां तक कि प्रोपेलर भी उनके प्रभाव से नहीं बचता। जब प्रोपेलर चलता है तो मसल के कैल्सियम कार्बोनेट से बने बाह्य कवच टूट जाते हैं और मोटी सफेद पपड़ी के रूप में जम जाते हैं। इससे शाफ्ट के चलने में बाधा उत्पन्न होती है और परिणामस्वरूप पोत को चलाने में ईंधन की खपत बढ़ जाती है।

जलमग्न सतहों और संरचनाओं पर मसलों तथा ओएस्टरों का जमना परिदूषक समुदाय के जैविक क्रम में एक स्थायी चरण है। मजेदार बात यह है कि ओएस्टर जिस सतह से एक बार चिपक जाते हैं, वहीं के वासी बन कर रह जाते हैं। पर मसलों के साथ ऐसी बात नहीं है। वे तो सतह से एक बार चिपकने के बाद भी अपनी गतिशीलता बनाये रखते हैं। इसलिये जब उन्हें यह लगने लगता है कि सतह उनके लिये अब उपयुक्त नहीं रही तब वे उसे छोड़कर नई सतह की तलाश में चल देते हैं। मसलों



चित्र 15. मसल परिदूषण बंदरगाह में

के लिये ऐसा करना इसलिये संभव है क्योंकि वे किसी सतह से उन पतले धागे सदृश्य संरचनाओं की मदद से चिपकते हैं, जिनके सिरों पर चिपकने वाली गद्दियां होती हैं। इन संरचनाओं को 'सूत्रगुच्छीय धागे' (बायसल ग्रेड) कहा जाता है। मसल जितनी मजबूती से चिपकना चाहती है, उसी के अनुसार वे एक या अनेक सूत्रगुच्छीय धागे सवित कर लेती हैं।

झाई डॉक में जल पोतों की तलियों पर से मसल परिदूषण तो आसानी से हटा दिया जाता है पर इन लचीले धागों को हटाने में बहुत परेशानी होती है।

मसल आमतौर से स्वयं सतह पर ही चिपकती हैं। पर जब जगह कम पड़ने लगती है, तब वे दूसरी मसलों की खोलों से ही चिपक जाती हैं। इसका परिणाम होता है मसलों का अनेक सतहों वाला परिदूषण। ये परिदूषण की परतें कई सेंटीमीटर मोटी हो जाती हैं। एक साधारण रूप से परिदूषित बोया पर परिदूषण तह की मोटाई अगर पांच सेंटीमीटर होती

है तो बुरी तरह परिदूषित बोया पर पन्द्रह सेंटीमीटर। वैज्ञानिकों ने मसलों के जमने के बारे में अध्ययन किये हैं। अगर मसल साफ न की जाये तो समय के साथ इसकी परतें भारी होती चली जाती है। साथ ही मसलों की परत बनाने की दर पर भौगोलिक स्थितियों के प्रभाव भी पड़ते हैं। शीतोष्ण सागर में यह दर कम होती है और गर्म सागर में अधिक।

मसलों का कवच दो कपाटों वाला और कैल्सियम कार्बोनेट का बना होता है। ये जीव, इस कवच को इच्छानुसार खोल और बंद कर सकते हैं। जब परिस्थितियां विषम हो जाती हैं, तब वे कवच बंद कर लेती हैं। साथ ही इनमें सागर में मुक्त रूप से विचरण करने की क्षमता भी होती है। यह क्षमता उन्हें सबसे खतरनाक परिदूषक जीव बना देती है।

### बार्नेकल

आगरे का ताजमहल संसार का आठवां आश्चर्य है। वह संगमर्मर (कैल्सियम कार्बोनेट) से बना है। कैल्सियम कार्बोनेट से ही निर्मित एक अन्य आश्चर्य है बार्नेकल। ताजमहल जगत-प्रसिद्ध है। उसके बारे में अनेक कवियों ने कवितायें लिखी हैं और उसकी प्रशंसा में अनगिनत गीत गाये हैं। पर बार्नेकल की प्रशंसा आज तक किसी ने नहीं की। कदाचित इसलिये कि वह मानव के द्वारा निर्मित वस्तु नहीं है। मुमताज की यादगार ताजमहल के निर्माण के लिये शाहजहां को बहुत बड़ी मात्रा में संगमर्मर मंगाना पड़ा था। पर बार्नेकल अपना कवच बनाने के लिये कैल्सियम कार्बोनेट की सम्पूर्ण मात्रा सीधे सागर के पानी से प्राप्त करता है। बार्नेकल की मृत्यु के बाद यह खोल उसका मकबरा बन जाता है, पर जीते जी वह उसका महल होता है। इस जीव में अपना महल बनाने की ही क्षमता नहीं होती, वह उसकी तत्काल मरम्मत भी कर सकता है। बार्नेकल के इस महल की सुंदर वास्तुकला को इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी से ही परखा जा सकता है। तभी तो आधुनिक इंजीनियर इसकी जटिल संरचना की प्रशंसा करते हुये नहीं थकते।



चित्र 16. परिदूषण सम्राट बार्नेकल

किसी सतह से चिपकने के लिये बार्नेकल एक प्रकार का चिपकाने वाला पदार्थ स्रवित करता है जो पानी की उपस्थिति में भी पॉलीमरित होकर कठोर हो जाता है। किसी सुंदर नाम के अभाव में वैज्ञानिक इसे 'सीमेन्ट' ही कहते हैं। मनुष्य अपनी सम्पूर्ण विद्वता के बावजूद भी अब तक इस प्रकार के किसी पदार्थ का आविष्कार नहीं कर पाया है। मनुष्य के द्वारा निर्मित कोई भी पदार्थ पानी में पॉलीमरित होकर कठोर नहीं हो पाता, और ऐसी सतह पर तो बिल्कुल नहीं, जिसे पूर्व उपचारित न कर लिया गया हो। अगर बार्नेकल के इस मजबूत आधार में कोई टूट-फूट हो जाती है तो वह तुरन्त सीमेन्ट स्रवित करके उसकी मरम्मत कर लेता है। वास्तव में बार्नेकल ऐसे कितने ही विलक्षण कार्य करता है, जो आज भी उच्च प्रौद्योगिकी के लिये भी संभव नहीं है।



अधिकांश क्रस्टेशियन प्रजातियों की भांति बार्नेकल भी दोहरी जिंदगी जीता है। झींगों और लोब्टरों से घनिष्ठ रूप से संबंधित बार्नेकल की प्रजातियां मुक्त रूप से तैरने वाले लार्वे लाखों की संख्या में उत्पन्न करती हैं। ये लार्वे अपने अल्प जीवन में कार्यांतरण की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरते हुये अंत में स्थिर जीवन बिताने के लिये एक सतह का चयन कर लेते हैं और चिपकने वाला द्रव सावित करके उससे ये स्थायी रूप से चिपक जाते हैं। लार्वे "साइपिस" कहलाते हैं जबकि चिपका हुआ रूप बार्नेकल।

साइपिसों की किसी सतह से जुड़ जाने के बाद बार्नेकल के जीवन में एक विलक्षण घटना घटती है। यह केवल बार्नेकल के साथ ही घटती है। साइपिस की सबसे पिछली टांगों के सिरे पर एक छोटा प्यालेनुमा अंग होता है। जो हमेशा एक ऐसी सतह की तलाश में रहता है जिसके साथ वह चिपक सके। एक बार ऐसी सतह मिल जाने पर यह निर्वात पेड की भांति उससे जुड़ जाता है और बार्नेकल को इतनी मजबूती से संभाले रखता है कि भयंकर से भयंकर लहरों के थपेड़ों और समुद्री तूफानों में भी वह नहीं छूट पाता। अब बार्नेकल के शरीर की विशेष सीमेन्ट ग्रंथियों से तरल सीमेन्ट स्रवित होकर विशेष नलिकाओं में से गुजरता हुआ चिपकने वाले प्याले के सिरे पर पहुंच जाता है। वहां सीमेन्ट पॉलीमरित होकर कठोर हो जाता है। जब एक बार लार्वा मजबूती से चिपक जाता है, तब वह अपनी गतिशीलता खो देता है और स्थिर हो जाता है। उस पर एक खोल चढ़ जाता है जो उसे शत्रुओं से बचाता है।

नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला (नेवल केमिकल एण्ड मेटालर्जिकल लेबोरेटरी), बम्बई में डा० करनदे और उनके सहयोगियों ने बार्नेकल के जीवन-चक्र के विस्तृत अध्ययन किये हैं। उन्होंने जिन प्रजातियों के अध्ययन किये हैं, उनके नाम काफी संगीतमय हैं—बालानस टिन्टिनाबुलम, चैथामुलस विदरसी, बालानस कम्प्युनिस, अमरिलस यूमारिलस, टेड्राकलितेला करनडाई। इस अध्ययन के फलस्वरूप



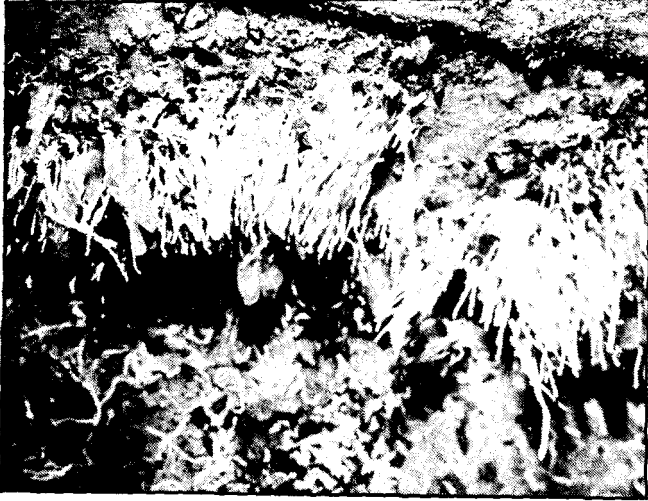
रसायनविज्ञानों की इस भयावह परिदूषक का मुकाबला करने की क्षमता बढ़ी है।

बार्नेकल प्रकृति के आश्चर्य हैं, फिर भी वे सबसे दुःसहासी शत्रु हैं। यह सच है कि जमाना बदल गया है पर परिदूषण के क्षेत्र में अब भी बार्नेकल और मांझियों के बीच युद्ध जारी है। परिदूषण से सुरक्षा का कोई भी उपाय उस समय तक अधूरा समझा जाता है जब तक कि वह बार्नेकल से परिदूषण की रोकथाम के लिये प्रभावी नहीं होता। बार्नेकल से रक्षा करना ही रसायनविज्ञानों का अंतिम ध्येय है।

### ट्यूबवर्म

ट्यूबवर्मों की बर्जियां परिदूषण उत्पन्न करने वाली नौसेना का प्रमुख सैन्य दल है। ट्यूबवर्म बहुत ही नाजुक पर जुझारू जीव हैं। वे बहुत कमजोर जीव हैं, फिर भी बलवान मनुष्य को चुनौती देते हैं। वे जो नलिका स्रवित करते हैं, वह मसल और बार्नेकल के अंगों की तुलना में बहुत नाजुक होती है, परन्तु जहां तक उसकी किसी सतह से चिपकने की क्षमता का प्रश्न है वह अत्यंत सुदृढ़ता प्रदर्शित करती है। वह उन सतहों से भी चिपक सकती है जो आमतौर से मसल और बार्नेकल को स्वीकार्य नहीं होता। जलपोतों के कांस्य धातु से बने प्रोपेलरों को परिदूषित करने वाले जीव मुख्यतः ट्यूबवर्म ही हैं। ये प्रोपेलर इतना विक्षोभ उत्पन्न करते हैं कि अन्य जीव उन पर अपनी पकड़ जमा ही नहीं पाते। पर ट्यूबवर्म न तो विक्षोभ से डरते हैं और न ही प्रदूषण से। और एक बार अपना अड्डा जमा लेने के बाद वे अधिकाधिक संख्या में अपनी जाति के अन्य सदस्यों को आकर्षित करते रहते हैं और प्रोपेलर के ब्लेडों पर झूले का मजा लेते रहते हैं।

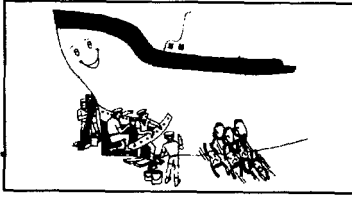
ट्यूबवर्म का दूर का एक रिश्तेदार, केंचुआ भूमि की उर्वरता बढ़ाने के कार्य हेतु मनुष्य जाति के लिये लाभकारी सिद्ध हुआ है। पर उसके विपरीत ट्यूबवर्म मानव निर्मित संरचनाओं को चाहे वे स्थिर हों अथवा



चित्र 17. जुझारू ट्यूबवर्म

गतिशील, बहुत हानि पहुंचाता है। न तो सुरंगों में प्रवेश करने वाले सागर के पानी का तीव्र वेग और न ही सागर की गहराई, ट्यूबवर्मों को अपने पैर जमाने में बाधा पहुंचाती है। मार्कर बाँयों अथवा सोनार डोमों को परिदूषण करने में ट्यूबवर्म मसलों से पीछे नहीं रहते।

## कोलम्बस से क्यूप्रिक आक्साइड तक



कहाँ जाता है कि अत्यंत प्राचीन काल में पृथ्वी के जीव जन्तुओं को महाप्रलय से बचाने और उनके वंशों को निरंतर जीवित रखने के लिये नोहा ने एक अत्यंत विशाल नाव का निर्माण किया था। वह नौका इतनी बड़ी थी कि उसमें हर जीव-जन्तु का एक-एक जोड़ा समा सकता था। नोहा या तो सच्चे जीवशास्त्री की भांति हर जीव-जन्तु की उपयोगिता समझते थे इसलिये उन्होंने अपनी नाव में परिदूषक जीवों को भी स्थान दे दिया था अथवा उनकी नाव की तली के निचली सतह पर अनजाने ही परिदूषक जीव चिपक गये थे। इनमें से चाहे कोई भी बात सही हो, पर इतना अवश्य सत्य है कि महाप्रलय के समाप्त हो जाने के बाद, परिदूषक जीवों ने अपनी वंश वृद्धि बहुत तेजी से की।

हमारी पौराणिक गाथाओं के अनुसार आज से हजारों वर्ष पूर्व, भगवान राम ने उस नाव में यात्रा की थी जिसे गुहा नामक केवट चला रहा था। राम कथा का वर्णन करने वाले महर्षि वाल्मीकी ने गुहा की नाव के पेंदे की स्थिति का कोई वर्णन नहीं किया है। परन्तु यह मान लेना उचित होगा कि उस समय भी परिदूषक जीव नाविकों के लिए सिरदर्द रहे होंगे।

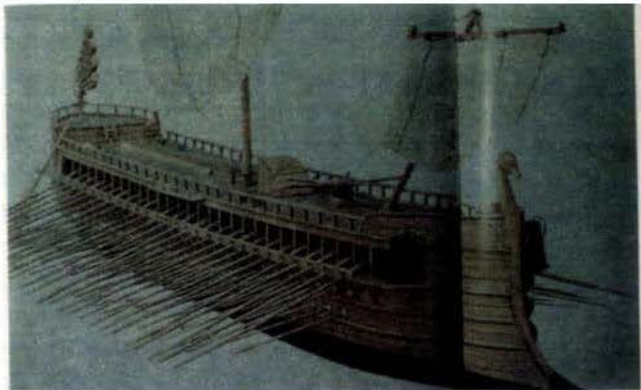




इतिहास में ऐसी अनेक गाथायें हैं जिनमें लम्बी-लम्बी समुद्री यात्राओं का उल्लेख है। समझा जाता है कि ईसा से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व भी फोनीशियन कोर्नवाल से टिन लाने के लिये समुद्री मार्ग से अफ्रीका का चक्कर लगाकर, ब्रिटेन जाते थे। प्राचीन मिश्रवासी ऐसी नावें बनाते थे जिनकी लम्बाई 48 मीटर से कम नहीं होती थी। प्राचीन राज्यों के निवासियों के पास जलपोतों के बड़े-बड़े बेड़े ही नहीं थे। वे सागरों पर अपना आधिपत्य बनाये रखने के लिये आपस में लड़ते भी रहते थे। उस युग के नौसैनिक पोत अथवा बड़े व्यापारिक जलपोत भी इन समुद्री अजूबों के क्रोध से बच नहीं पाते थे। वास्को-दि-गामा तथा महान अन्वेषक कोलम्बस की समुद्री यात्राओं के दौरान भी जलपोतों की तली पर चिपके परिदूषकों को हटाने के लिये उन्हें तटों पर लाना पड़ता था। प्राचीन युग में भी मनुष्य ने उस समय उपलब्ध सीमित साधनों से परिदूषकों से लड़ने के प्रयास किये थे।

### आरम्भिक कवच

प्राचीन नाविक लकड़ी के ढांचे वाले जहाज़ चलाता था। उस समय उसे दो दुश्मनों—परिदूषण और काष्ठ-छेदन—का सामना करना पड़ता था। प्रमुख समुद्री काष्ठ-छेदक जीव कृमि होते हैं और वे टेरेडो कहलाते हैं। इन टेरेडो की तुलना तारपीडो से की जाती है। यह तुलना उपयुक्त भी है क्योंकि टेरेडो भी लकड़ी के तख्तों में आर-पार छेद कर देते हैं। हमें ज्ञात है कि कोलम्बस की कम से कम एक यात्रा को इसीलिये रद्द कर देना पड़ा था कि कृमियों ने उसकी जहाज़ों में छिद्र कर दिये थे। भापचलित जहाज़ों के आगमन तक मनुष्य को दो शत्रुओं का सामना करते रहने पड़ा—डरावने परिदूषण का और आतंक फैलाने वाले टेरेडो का। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि उस समय लड़ाई युद्धपोतों और काष्ठ छेदकों के बीच थी।



चित्र 18. टेरहो तथा वामकन्य पारश्रावत पुरातन कण्ड नाव

प्राचीन यात्री विनाशकारी टेरहो को रोकने के लिये जहाज़ की बाहरी सतह पर टैलो का लेप करते थे। पर उसका प्रभाव थोड़े समय के लिये ही रहता था। समझा जाता है कि प्राचीन फोनीशियन और कार्थेजियन लकड़ी की नावों के पेटों की रक्षा के लिये पिच का उपयोग करते थे। अन्य देशवासियों ने जलमग्न सतहों पर मोम, टार और एस्फ़ाल्ट जैसे पदार्थों के लेप आजमाये। इन उपचारों से अतिरिक्त लाभ यह होता था कि लकड़ी की सतह जलरुद्ध बन जाती थी, उसकी संरचनात्मक शक्ति बढ़ जाती थी और नाव को तैरने में अधिक आसानी होती थी।

दसवीं सताब्दी में वाइकिंग अपनी नावों के उन हिस्सों पर, जो पानी से ऊपर रहते थे, पेंट करते थे। न कि उन भागों पर जो पानी में डूबे रहते थे। यद्यपि वाइकिंगों की एक गाथा में "सील टार" का उपयोग करके छोटी नावों को कीड़ों से रक्षा करने का उल्लेख है पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह सामान्य प्रथा नहीं थी। तेरहवीं से पंद्रहवीं सताब्दी तक जलमग्न सतहों की रक्षा की दृष्टि से पिच, जिसमें कभी-कभी टार, तेल, रेजिन और टैलो मिलाये जाते थे, काफी प्रचलित था। पंद्रहवीं



शताब्दी में भी वेनिस के विशाल बेड़े में जहाज़ों की निचली सतह पर टार का उपयोग किया जाता था।

इसी प्रकार उन जहाज़ों की, जिनमें कोलम्बस ने यात्रायें की थीं, रक्षा टैलो और पिच के मिश्रण से की गई थी। परन्तु इससे बार्नेकल और टेरेडो निरुत्साहित नहीं हुए और हर कुछ महीनों बाद परिदूषण को हटाने के लिए जहाज़ों को तट पर लाना जरूरी होता था। दूसरी ओर पुर्तगाल निवासी पंद्रहवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में अपने जहाज़ों की बाहरी सतह को कई सेंटीमीटर की गहराई तक झुलसा लेते थे। वास्तव में जब वास्को-डि-गामा ने भारत की खोज के लिये अपनी यात्रा आरंभ की थी, तो उस समय उसका जहाज़ ऐसे ही अभिक्रियत था। ब्रिटेनवासियों ने भी 1820 में अपना एक सम्पूर्ण जहाह, *रायल विलियम्स* झुलसी हुई लकड़ियों से ही बनाया था।

जब यूरोपवासियों को यह ज्ञात हुआ कि धार्मिक ग्रंथों के मत के विपरीत पृथ्वी चपटी नहीं है और जैसे-जैसे सोने और चांदी के प्रति उनका मोह बढ़ता गया, जहाज़ बड़े होते गये, जहाज़ी-बेड़ों का आकार बढ़ता गया और समुद्री यात्रायें लम्बी होती गईं। साथ ही जहाज़ों को टैलो, टार, पिच और तेल आदि से दिये जाने वाले रक्षात्मक उपचार अव्यावहारिक हो गये। टैलो की मदद से लड़ा जाने वाला यह युद्ध, "दिखावटी युद्ध" बन गया जिसमें बार्नेकल विजेता बना रहा।

### अतिरिक्त कवच

कृमियों के विरुद्ध इस युद्ध का दूसरा चरण आरंभ हुआ नावों की तली पर एक रक्षात्मक आवरण के चढ़ाने से। सबसे पहले ये आवरण जन्तुओं की खालों से बनाये गये। ये आवरण नावों की निचली सतह पर चढ़ाये जाते थे। खाल, बाल और तेलों के खोल पर बाद में लकड़ी का आवरण चढ़ाया जाता था जिससे नाव के तख्ते अंखंडित रहे आते थे। परन्तु इससे नाव निर्माण की लागत बहुत बढ़ जाती थी।



## सीसे के आवरण की शुरूआत

आवरण के उपयोग में क्रांति आयी जलमग्न तली को ढकने के लिये धातु खोल का इस्तेमाल करने से। इस बारे में जो धातु सबसे पहले, बड़े पैमाने पर इस्तेमाल की गई वह थी सीसा। प्राचीन यूनानवासी जो अपने देवी-देवताओं की मूर्तियों के निर्माण और कला प्रेम के लिये प्रसिद्ध थे अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिये भी मशहूर थे। ईसा से 300 वर्ष पूर्व, जब अन्य देश लकड़ी में छेद करने वाले कीड़ों के लिये उपयुक्त उपाय ढूँढने का प्रयत्न कर रहे थे, उस समय यूनान निवासी अपने जहाजों की रक्षा सीसे के खोल से करने लगे थे। साइराकूज के आर्कमीडिज, जिसका शासन काल ईसा पूर्व 287 से 212 वर्ष तक था, के जहाजों पर तांबे के बोल्टों से कसा सीसे का खोल चढ़ा हुआ था।

बाद में ईसा से तीन शताब्दी पूर्व रोमन लोगों ने भी सीसे के आवरण का इस्तेमाल शुरू कर दिया था। सीसे का खोल नाव की तली से तांबे या गिल्ट की कीलों से जड़ा रहता था। सौभाग्यवश उस समय भी इन दो धातुओं के बीच कागज या कपड़े की विद्युत्तरोधी तह लगायी जाती थी। रोमन जहाजों के ऐसे अनेक अवशेष मिले हैं जिनके सीसे के आवरण अच्छी हालत में थे।

उसके बाद के काल में लियनार्दो-द-विंची ने सन् 1500 में सीसे की चादर बनाने के लिये एक रोलिंग मिल का डिजाइन तैयार किया था। सबसे पहले स्पेन ने सीसे के आवरण का इस्तेमाल आरंभ किया; उसके बाद फ्रांस और इंग्लैंड ने। वास्तव में इंग्लैंड के राजा चार्ल्स द्वितीय ने तो यह आदेश जारी कर दिया था कि सरकारी जलपोतों पर किसी अन्य प्रकार का आवरण चढ़ाया ही नहीं जाना चाहिये। इस प्रकार उनके काल में एच.एम.एस. फीनिक्स और लगभग बीस अन्य पोतों की रक्षा सीसे के खोलों द्वारा ही की गई थी।

सदियों तक सीसे का आवरण प्रमुख पोत निर्माताओं में बहुत



लोकप्रिय रहा। पर बाद में पाया गया कि पतवार (रडर) के लोहे पर वह संक्षारी प्रभाव डालता है। इसके परिणामस्वरूप सीसे के आवरण वाले पोत समुद्री यात्राओं के लिये असुरक्षित हो जाते हैं। वर्ष 1668 में जब सर थामस एलन एलजीरियनों पर हमला करने के लिये प्रस्थान करने लगे तो उन्होंने यह विशेष अनुरोध किया कि उनके पोतों पर सीसे के आवरण चढ़े हुये न हों। उनका कहना था कि सीसे के आवरण से पोत इतने भारी हो जाते हैं कि वे शत्रु के बिना आवरण चढ़े जहाज़ों का पीछा नहीं कर पाते।

### तांबे का दबदबा

सीसे का आवरण क्षीण प्रतिदूषक था यद्यपि वह टेरेडो कृमियों के लिये भौतिक अवरोध का कार्य करता था। बाद में तांबे के प्रतिदूषक गुण ज्ञात हुये। इस प्रकार तांबे का बहुतायत से उपयोग होने लगा और उसने सीसे के आवरणों को विस्थापित कर दिया।

प्राचीन काल से ही भारतीय तांबे के लाभकारी गुणों मे परिचित थे। समझा जाता है कि प्राचीन फोनीशियन और कार्थेजियन अपनी नावों पर आवरण चढ़ाने के लिये तांबे का उपयोग करते थे। पर यह स्पष्ट नहीं है कि प्राचीन युग में और लोग भी तांबे के आवरणों का उपयोग करते थे और अगर ऐसा था तब उसका उपयोग क्यों बंद हो गया। हाल ही में की गई खुदाई से पता चला है कि ईसा पूर्व दसवीं शताब्दी में भी तांबे का ढलाईखाना मौजूद था।

प्रतिदूषक के रूप में तांबे की पतली चादर को इस्तेमाल करने के संबंध में पहला पेटेन्ट सन् 1625 में लिया गया। जहाज़ों के तख्तों पर खोल चढ़ाने और उन्हें परिरक्षित करने के बारे में एक अन्य पेटेन्ट सन् 1728 में दर्ज किया गया। पर इन पेटेन्ट की गयी विधियों के व्यावसायिक उपयोग के बारे में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है।

सन् 1758 में एक ब्रिटिश जहाज़ एच. एम. एस. अलार्म पर



प्रयोगात्मक तौर पर तांबे की पतली चादर का आवरण चढ़ाया गया। इस 32-तोपों वाली फिगेट जहाज़ ने वेस्ट इंडीज की यात्रा के बाद यह सूचना दी कि वह हानिकारी कीड़ों से मुक्त रहा। उसकी तली आश्चर्यजनक रूप से किसी भी परिदूषण से एकदम मुक्त थी। अनुमान लगाने पर पता चला कि तांबे के आवरण की लागत उस लकड़ी के आवरण के बराबर थी जिसका उपयोग पहले किया जाता था। जहाज़ द्वारा दी गई सूचना से यह सिद्ध होता था कि तांबे ने टेरेडो कीड़ों से जहाज़ की रक्षा की; वह तख्तों के लिये हानिकारी नहीं था और उसने परिदूषण को बढ़ावा नहीं दिया। उसके बाद से ब्रिटिश नौसेना ने तांबे के आवरण के पूरी तरह इस्तेमाल की इजाज़त दे दी। अमेरिकावासियों ने तांबे के आवरण का उपयोग सन् 1781 में आरंभ किया। उसे अपने फिगेट "एलायंस" पर चढ़ाया। शीघ्र ही अन्य समुद्री देश भी तांबे के आवरण का उपयोग करने लगे। फ्रांसिसियों ने तो सन् 1801 में अपने सम्राट नेपोलियन के लिये तांबे की चादर से ढकी एक पनडुब्बी भी तैयार की थी।

आरंभ में तांबे के आवरण को लोहे की कीलों द्वारा जड़ा जाता था। पर लोहे के गंभीर संक्षरण ने आवरण को जड़ने के लिये तांबे के ही बोल्टों का इस्तेमाल करने के लिये प्रेरित किया। परन्तु इसके बावजूद भी तांबे का संक्षरण बड़ी मात्रा में होता था जिसके फलस्वरूप आवरण की लागत बहुत अधिक हो जाती थी। इसलिये इस समस्या को रॉयल सोसायटी के समक्ष प्रस्तुत किया गया। समस्या का अध्ययन करने के बाद सर हम्फ्री डेवी ने सन् 1824 में सुझाया कि जस्ते के मटर के दाने जैसे छोटे टुकड़े का इस्तेमाल करने से भी कम से कम 3 वर्ग मीटर तांबे की रक्षा की जा सकती थी। इस सुझाव पर नौसेना को तांबे की रक्षा करने हेतु लोहे की कीलों के स्थान पर जस्ते की कीलें इस्तेमाल करनी पड़ी।

यद्यपि यह तकनीकी तांबे को घुलने (संक्षारित होने) से बचाने के लिये अत्यंत सुचारू थी पर इससे अत्यधिक परिदूषण होता था। यद्यपि तांबा दूसरी वस्तुओं की रक्षा कर सकता था पर स्वयं तांबे को परिदूषित होने

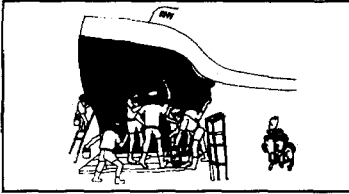


से नहीं बचाया जा सकता था। इससे यह प्रतीत होने लगा कि तांबे रूपी ब्राउन योद्धा के विषदंत टूट गये। परन्तु इसी समय लोहे के ढांचे वाली भाप-चालित जहाज़ों का चलन आरंभ हो गया और तांबे के आवरण के आगे प्रयोग बंद हो गये।

### प्रतिदूषक पेन्ट

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लोहे के ढांचे वाले जहाज़ों का चलन आरम्भ हो गया था और सन् 1810 में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने ही नौसेना के लिये लोहे के जहाज़ बनाने के बारे में विचार किया था। अब जहाज़ बड़े-बड़े आकारों के बनने लगे थे; साथ ही उनकी चौड़ाई भी अधिक होने लगी थी। धीरे-धीरे युद्धपोत और व्यवसायिक जहाज़, दोनों ही भारी होते चले गये।

पर बार्नेकलों से युद्ध जारी रहा क्योंकि ये लोहे के ढांचे भी जहाज़ों को परिदूषण से नहीं बचा सके थे। आधुनिक जहाज़ों पर पुराने शत्रु के आक्रमण जारी रहे। समस्या बहुत विशाल थी पर उसका हल पता नहीं था। आरम्भ होने से पहले ही युद्ध हारा जा चुका था। एच. एम. एस. जैकल और एच. एम. एस. ट्राइटन पर चढ़ाये गये तांबे के आवरणों के परिणामस्वरूप प्लेटें बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गई थीं। वास्तव में एच. एम. एस. ट्राइटन के कप्तान ने यह स्वीकार किया कि लोहे की प्लेटें भी परिदूषणरूपी शत्रु के हाथों परास्त हो चुकी थीं। इसके फलस्वरूप सन् 1847 में नौसेना ने जहाज़ों के निर्माण में लोहे के इस्तेमाल को बंद कर देने की बात पर भी विचार किया था। परन्तु समय पर लोगों को सदबुद्धि आ गई और उन्होंने परिदूषण के उपयुक्त हल की खोज का कार्य आरम्भ कर दिया।



## हल ढूँढना है मुश्किल

तांबे के समुचित विकल्प की—कदाचित तांबे और कुछ विषैले रसायनों के मिश्रण के रूप में—खोज आरम्भ हो रही थी। वैसे इसा से 412 वर्ष पूर्व ही यह ज्ञात हो चुका था कि आर्सेनिक और गंधक के मिश्रण को तेल में मिलाकर ढांचे पर लगाने से जहाज़ पानी में आसानी से आगे बढ़ता है। परन्तु युद्धपोतों पर तेल और मोम नहीं लगाये जा सकते थे। इसीलिये इस प्रकार के यौगिक को किसी पेन्ट या वार्निश में मिलाकर लगाने की तकनीक ही बेहतर पायी गई। और इस प्रकार आरम्भ हुई परिटूषणनाशक पेन्ट की खोज जिसे “युद्ध पेन्ट” अथवा “प्रतिपरिटूषक पेन्ट” भी कहा जा सकता है।

शीघ्र ही हर रसायनशास्त्री और भौतिकशास्त्री एक ऐसे यौगिक की खोज में जुट गया जो आदर्श परिटूषकनाशक सिद्ध हो सके। वर्ष 1865 तक अकेले ब्रिटेन में ही इस बारे में 300 से अधिक पेटेन्ट दर्ज कर दिये गये। निश्चय ही इनमें से अधिकांश नुस्खे एकदम बेकार थे। एडमिरल बेलचर के अनुसार ये नुस्खे परिटूषण उत्पन्न करने के लिये अधिक थे परिटूषण रोकने के लिये कम। शीघ्र ही ये परिटूषणरोधी पेन्ट इतने बदनाम हो गये कि उन ब्रिटिश पोतों पर से, जिन पर इन पेन्टों का





लेप किया गया हो, प्रत्येक मसल पकड़ने के लिये नौसैनिकों को दस शलिंग का पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा की गई।

रसायनविज्ञों को इस विपत्ति का हल मिला ब्राउन तांबे ही में। पहला व्यावहारिक परिदूषणरोधी नुस्खे में, जिसे लोग प्यार से 'मैकइन्नेस' (McInnes) कहते थे, एक धात्विक साबुन था जिसमें कॉपर सल्फेट मौजूद था। उसे गर्म अवस्था में एक जल्दी सूखने वाले प्राइमर पेन्ट के ऊपर लगाया था। "इटेलियन मोरावियन" नाम से प्रसिद्ध एक अन्य गर्म प्लास्टिक नुस्खा तो इतना लोकप्रिय हो गया था कि वह वर्तमान शताब्दी में भी इस्तेमाल किया जाता था।

ऐसे नुस्खे तैयार करने हेतु तांबे के अतिरिक्त, बड़ी संख्या में अन्य रसायन भी आजमाये गये। इन रसायनों में आर्सेनिक, पारा आदि के यौगिक प्रमुख थे। इन पेन्टों में, फैलाने वाले माध्यम के रूप में अलसी का तेल, शैलक, टार और विभिन्न प्रकार की रेजिनों का उपयोग किया गया और घोलकों के रूप में टरपनटाइन से लेकर बेन्ज़ीन तक का। उस समय भी यह बात ज्ञात थी कि नुस्खा चाहे जो भी हो उसका लेप करने से पहले जहाज़ों पर प्रतिसंक्षारक पेन्ट की तह चढ़ानी जरूरी होती है क्योंकि दुर्भाग्य से उन को संक्षारण और परिदूषण की दुहरी समस्या का सामना करना पड़ता है।

लोहे के जहाज़ों के लिये कवच के रूप में तांबा असफल रहा। पर अधिकांश वैज्ञानिक परिदूषण को गम्भीर समस्या मानते ही नहीं थे। उनके विचार से यह समस्या इतनी गम्भीर नहीं थी कि उस का गहन अध्ययन किया जाये। इसलिये परिदूषण के बारे में वैज्ञानिक अनुसंधान अपर्याप्त ही रहे। इसका कारण कदाचित्त यह था कि इस विषय पर पर्याप्त प्रयोगशाला-अध्ययन नहीं किये गये थे। परन्तु नौसेना के अधिकारी, वास्तुशिल्पी और जल जहाज़ निर्माता आपस में इस समस्या पर व्यापक रूप से चर्चा करते रहते थे क्योंकि वे ही लोग इस से सर्वाधिक प्रभावित थे।



अमेरिकी नौसेना ने पहली बार पेन्ट अनुसंधान पर गम्भीरता से विचारा सन् 1906 में। उस समय उपलब्ध व्यावसायिक नुस्खों को जलमग्न सतहों पर लेपित करके प्रयोग किये गये। इन प्रयोगों से पता चला कि इन पेन्टों के गुण नियंत्रण पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। साथ ही हर पेन्ट के गुण भिन्न-भिन्न होते हैं। वैसे भी हर पेन्ट को परखने में छह महीने से अधिक समय लगता था।

द्वितीय विश्व-युद्ध के आरम्भ तक यही स्थिति रही। वर्ष 1930 में संयुक्त राज्य अमेरिका की एक प्रमुख सागरवैज्ञानिक संस्था और नौसेना शिपयार्ड के सम्मिलित प्रयासों से गर्म प्लास्टिक के नुस्खे का विश्लेषण किया गया और उसका हर घटक ज्ञात किया गया। इन अध्ययनों में यह भी पाया गया कि व्यावसायिक नुस्खों के निर्माता अपने उत्पादनों में बिना यह जाने कि रचक वास्तव में सतह की रक्षा में योग दे सकते हैं या नहीं रचकों की संख्या बढ़ाते जाते हैं। उसके फलस्वरूप सर्वोत्तम परिदूषणरोधी नुस्खों के लिये, वैज्ञानिक प्रयोगों और नौसैनिक जहाजों पर परीक्षणों के आधार पर, उपयुक्त रचकों की खोज आरम्भ हुई।

इन अध्ययनों से जो पहला और सबसे महत्वपूर्ण तथ्य सामने आया वह था परिदूषणरोधी पेन्ट जो उसी समय तक प्रभावी रहता है जब तक पेन्ट का विषैला घटक जल घुलनशील अवस्था में, बाहर आता रहता है। इस बारे में दूसरा आवश्यक तथ्य यह पाया गया कि उसके विषैलेपन का क्षेत्र काफी व्यापक होना चाहिये जिससे बैक्टीरिया से लेकर बार्नेकल तक सब प्रकार के परिदूषकों के प्रति वह समान प्रभावी हो सके। तीसरा उसमें यह गुण होना चाहिये कि वह अन्य रचकों के साथ लगभग हर अनुपात में मिल सके।

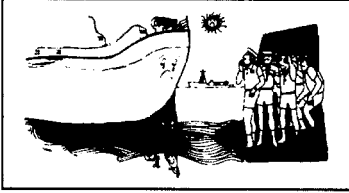
अब यह सिद्ध हो चुका है कि तांबे के यौगिकों में प्रतिपरिदूषण पेन्टों के लिये आवश्यक सब गुण मौजूद होते हैं। तांबे के छह लवणों में से क्यूप्रिक सिट्रेट पानी में अत्यधिक घुलनशील है जबकि क्यूप्रिक आक्साइड सबसे कम घुलनशील। इसीलिये इन दोनों यौगिकों को छोड़ दिया गया।



दूसरी ओर क्यूपरस आक्साइड समुद्री जल में मामूली तौर पर ही घुलनशील है और वह अपना प्रभाव काफी समय तक बनाये रख सकता है। इसलिये क्यूपरस आक्साइड विश्व की विभिन्न नौसेनाओं द्वारा सर्वाधिक स्वीकृत विषैला पदार्थ मान लिया गया।

आजकल क्यूपरस आक्साइड को पेन्ट के आधारभूत घटक अथवा मैट्रिक्स में समावेशित कर लिया जाता है। प्रचलित पेन्टों में मैट्रिक्स में रोजिन होता है। रोजिन प्राकृतिक रूप से मिलने वाला एक अम्लीय रेजिन है जो पानी में घुलनशील होता है। इस प्रकार के मैट्रिक्स में मिला हुआ तीव्र विष रचकों के साथ, सागर के पानी में घुलता रहता है। पर जब मैट्रिक्स और विषैला पदार्थ दोनों ही पानी में घुलते रहेंगे तब पेन्ट की परत अपनी शक्ति खो देगी और वह उस सतह से अलग हो जायेगी जिस पर उसे चढ़ाया गया है। इस बारे में आश्वस्त होने के लिये कि पेन्ट की परत सतह से चिपके रहे मैट्रिक्स में उदासीन पदार्थ और प्लास्टीसाइजर मिलाये जाते हैं। ऐसे प्रतिपरिदूषक पेन्टों ने जिनमें आयतन के अनुसार 30-50 प्रतिशत सांद्रता में नया युद्ध अस्त्र—क्यूपरस आक्साइड—मौजूद था, परिदूषक जीवों की संयुक्त सेना की मृत्यु की घोषणा कर दी। इस अस्त्र के विरुद्ध परिदूषकों की थल सेना असफल हो गई क्योंकि वह पेन्ट पर अपने कदम नहीं जमा सकती थी। ढाल के रूप में सतह की खोज करने वाली सेनायें तांबे की विशाल शक्ति से परास्त हो गईं। पर मसल, बार्नेकल और ट्यूबवर्म की त्रिमूर्ति ने अपने आक्रमण निरंतर जारी रखे और वे सतह पर अपने पांव जमाने में सफल हो गये परन्तु अतंतः क्यूपरस आक्साइड घोल की सटीक मार से नष्ट हो गये।

जहाज़-निर्माता प्रसन्न थे कि उनके जहाज़ अब बिना किसी हानि के सागर पर यात्रायें कर सकते थे। जहाज़ों के कप्तानों, जहाज़ निर्माताओं और गोदी कर्मचारियों सब ने चैन की सांस ली कि अंत में बार्नेकलों की शक्तिशाली सेना पर विजय पा ही ली गई। पर क्या ऐसी ही वास्तविकता थी?



## पश्चिमी कमान

जी नहीं! बार्नेकलों से युद्ध समाप्त नहीं हुआ था। नौसैनिक बेड़ों के इस भयंकर शत्रु ने शक्तिशाली नौसैनिकों को आतंकित करना जारी रखा। मानव की मशीनी शक्ति से कुछ क्षण के लिये स्तम्भित हो जाने के बाद इस कभी-न-हार-मानने वाले शत्रु ने अपने आक्रमण रोके नहीं वरन् जारी ही रखे। इस प्रकार वे जहाज़ जो अत्याधिक आत्मविश्वास के साथ समुद्री यात्रा पर रवाना होते और परिदूषक प्रजातियों से बुरी तरह परास्त होकर गोदियों में वापिस आते। तांबे की उच्च प्रतिभा किसी भी जहाज़ को, चाहे वह ब्रिटिश जहाज़ था या अमेरिकन अथवा इतालियन, एक वर्ष के लिये भी सुरक्षा प्रदान करने में असमर्थ रही।

### मध्य रात्रि को समारोह

14-15 अगस्त 1947 की मध्य रात्रि को दिल्ली में लाल किले पर से यूनियन जैक के हटने और राष्ट्रीय तिरंगे के उस पर फहराने से भारत की स्वतंत्रता का शुभारंभ हुआ। 15 अगस्त 1947 के सुप्रभात की पहली किरण का स्वागत बम्बई बंदरगाह में खड़े नौसैनिक जहाज़ों ने भी किया।



उसी दिन से रॉयल इंडियन नैवी, इंडियन नैवी बन गई। उसे ब्रिटिश नौसेना की जहाज़ों विरासत में मिली। इस प्रकार अब उन जहाज़ों की रक्षा और रख-रखाव करना हमारी नौसेना का उत्तरदायित्व हो गया।

प्रगति करती हुई नौसेना को वैज्ञानिक सम्बल प्रदान करने के लिये दो प्रयोगशालायें—बम्बई में नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला और कोचीन में नौसेना भौतिक तथा समुद्र-विज्ञान प्रयोगशाला (निवल फिजिकल एण्ड ओशनोग्राफिक लेबोरेटरी)—स्थापित की गईं। नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला की स्थापना एक अत्यंत साधारण इमारत में हुई थी जो हवाई हमले से बचाव के लिये बनाये गये एक भूमिगत शैल्टर की याद दिलाती थी। इसी इमारत में प्रयोगशाला ने अपने आरम्भिक वर्षों में धातुभंग (मैटल फेलयर) और ईंधन के रासायनिक परीक्षणों से संबंधित जहाज़ों की दैनिक समस्याओं के हल खोजे। वर्ष 1961 तक इस प्रयोगशाला का क्षेत्र नौसैनिक जहाज़ों को वैज्ञानिक सम्बल प्रदान करने मात्र तक सीमित था। इसके बाद 1961 में प्रयोगशाला रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन (डिफेंस रिसर्च एण्ड डेवलपमेन्ट आर्गनाइजेशन) का एक भाग बन गई और उसने भारतीय परिस्थितियों के लिये उपयुक्त टेक्नोलॉजी विकसित करने का चुनौतीपूर्ण कार्य आरंभ कर दिया।

हमारी नौसेना को जहाज़ ब्रिटिश नौसेना से विरासत में मिले थे। और उन्हीं से मिली थी सम्बंध टेक्नोलॉजी। परन्तु इस टेक्नोलॉजी के बारे में जहाज़ी कर्मचारियों के अनुभव बहुत निराशाजनक रहे। यह टेक्नोलॉजी ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने अपने जहाज़ों के लिये विकसित की थी। वह भारत की उष्ण कटिबंधीय परिस्थितियों के लिये उपयुक्त नहीं थी। वह जहाज़ों के जलमग्न अंगों की सुरक्षा के बारे में अधिक उपयुक्त थी। जिन जहाज़ों पर ब्रिटिश नौसेना द्वारा विकसित पेन्टों के रक्षात्मक लेप चढ़ाये गये उन पर शीघ्र ही (छह महीने जैसे अल्प समय में ही) परिदूषक जीवों के उपनिवेश बन गये। और लगभग वही स्थिति उत्पन्न हो गई जो कोलम्बस



के समय थी—जब उसे परिदूषण हटाने के लिये अपनी जहाज़ों को जल्दी-जल्दी तट पर लाना पड़ता था। इसी प्रकार अब भारतीय नौसैनिक जहाज़ों को भी जल्दी-जल्दी गोदियों में लाना जरूरी हो गया। पर देश में शुष्क गोदियों की सुविधा सीमित थी। इसलिये जहाज़ों को जल्दी-जल्दी, उनकी तलियों को साफ करने के लिये, शुष्क गोदी में लाने के फलस्वरूप गोदियों के मैनेजरों के लिये गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई। परिणामस्वरूप अनेक जहाज़ों को लम्बे समय तक सफाई के लिये रुके रहने के लिये मजबूर होना पड़ा। इस समस्या के समाधान के लिये गोदियों के मैनेजर इस छोटी सी प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों से एक ऐसा पेन्ट विकसित करने के लिये अनुरोध किया जो कम से कम एक वर्ष तक जहाज़ की रक्षा कर सके। यह प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों के लिये एक चुनौती थी। उन्होंने प्रतिदूषक पेन्ट विकसित करने के लिये जीव-वैज्ञानिक विशेषज्ञ और पेन्ट टेक्नोलॉजिस्ट दोनों की एक संयुक्त समिति बनाई।

## भारतीय सागरों में परिदूषण

जीववैज्ञानिकों का पहला और सबसे महत्वपूर्ण कार्य था—भारतीय सागरों में पाये जाने वाले परिदूषक जीवों की गतिविधियों का अध्ययन करना। इस प्रकार परिदूषण का अध्ययन करने वाले सागर वैज्ञानिकों के लिये भारतीय सागरों में पाये जाने वाले परिदूषक जीवों की गतिविधियों, उनकी आदतों, सतहों पर जमने के गुणों आदि के बारे में अनुसंधान सर्वाधिक महत्वपूर्ण बन गये।

इन अध्ययनों में अनेक दिलचस्प तथ्य सामने आये। ब्रिटेन के आसपास के सागरों में परिदूषक जीवों का बोलबाला मुख्य रूप से गर्मी के कुछ महीने में ही रहता है। दूसरी और भारतीय सागरों में परिदूषक जीव बारहों महीने बहुतायत से पाये जाते हैं। भारतीय सागरों में वर्ष भर पानी का तापमान लगभग एक सा रहता है और उसमें बहुत अंतर नहीं



होता। इसलिये परिदूषक जीवों का उत्पादन भी बहुत अधिक होता है। यद्यपि भारतीय सागरों के जल की लवणता मानसून के महीनों में कम हो जाती है पर इसके फलस्वरूप जहां एक ओर एक किस्म के परिदूषक जीवों के सतहों पर अड्डा जमाने की क्षमता कम हो जाती है, वहां दूसरी ओर अन्य किस्मों के परिदूषक जीवों का उत्पादन बढ़ जाता है।

भारतीय सागरों में परिदूषक जीवों की बढ़त का अनुमान, सही परिपेक्ष्य में, औसत जैवमात्रा के उत्पादन की गणना करके ही लगाया जा सकता है। और जैवमात्रा के उत्पादन का हिसाब प्रति इकाई क्षेत्र में प्रतिवर्ष प्राप्त होने वाले परिदूषक मलवे को वजन करके लगाया जा सकता है। अण्डमान द्वीपसमूह में जैवमात्रा का उत्पादन आठ किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर प्रति वर्ष है। लगभग इतना ही उत्पादन मद्रास के निकट के सागर में होता है। बम्बई में तट के किनारे के सागर में यह उत्पादन पांच से छह किलोग्राम प्रतिवर्ग मीटर प्रति वर्ष है। इसकी तुलना में संयुक्त राज्य अमेरिका में फ्लोरिडा के निकट बॉयोमास का वार्षिक उत्पादन तीन किलोग्राम; हांगकांग में पांच किलोग्राम और अर्जन्टाइना में केवल 0.5 किलोग्राम है।

अध्ययनों में जो जैववैज्ञानिक तथ्य सामने आये वे पेन्ट टैक्नोलॉजिस्ट को यह बात मनवाने के लिये पर्याप्त थे कि समशीतोष्ण सागरों में परिदूषण से रक्षा करने के लिये जो पेन्ट-नुस्खे कारगर थे वे भारतीय सागरों के लिये उपयुक्त नहीं थे। इसीलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि भारत में शुष्क गोदियों के मैनेजरों की स्थिति चिंताजनक थी।

## खोजबीन

निर्धारित समय से पहले जब भी कोई जहाज़ शुष्क गोदी में आ जाता था तो गोदी के मैनेजर चिंताग्रस्त हो जाते थे क्योंकि किसी जहाज़ का

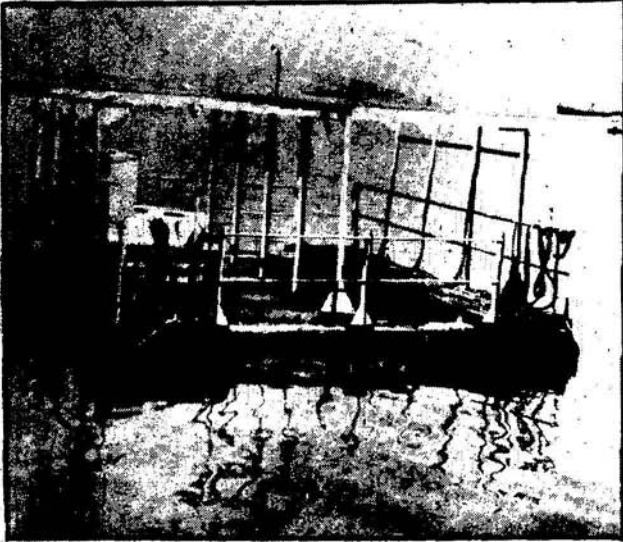


इस तरह आना उनके कार्यक्रम में बहुत गड़बड़ उत्पन्न कर देता था। इस वजह से गोदियों के कर्मचारियों पर, जो पहले ही अत्यंत व्यस्त रहते थे, काम का बोझ और बढ़ जाता था। इस बारे में मैनेजरों और नौसैना रासायनिक और धातुकर्मीय प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों की सम्मिलित बैठकें हुईं। उनमें विचार-विमर्श करने पर भी यह बात स्पष्ट नहीं हो पाई कि पेन्ट निर्माताओं द्वारा अपने पेन्टों की सुरक्षा प्रदान करने की अवधि का दावा गलत क्यों सिद्ध होता है। इसलिये प्रयोगशाला ने इस समस्या का हल ढूंढने के लिये स्वयं अध्ययन करने की बात सोची।

प्रयोगशाला ने इन अध्ययनों में तट से दो किलोमीटर दूर, मध्य सागर में लकड़ी के लट्ठों का एक विशेष बेड़ा तैयार किया और बड़ी संख्या में पैनलों को उन परिस्थितियों में, जिनका सामना जहाज़ को सागरों में करना पड़ता है, रखा। निश्चय ही बेड़े और पैनलों पर व्यावसायिक प्रतिदूषक पेन्टों के लेप चढ़ाये गये थे। इन प्रयोगों में पाया गया कि उन पेन्टों से, जिनके बारे में यह दावा किया गया था कि उनके प्रति वर्ग सेन्टीमीटर क्षेत्र से चौबीस घन्टे में 10 माइक्रोग्राम की दर से तांबा निक्षालित होता है, वास्तव में तांबे की निक्षालित होने की दर 13 माइक्रोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर प्रति दिन से भी अधिक थी। इसके परिणाम स्पष्ट थे। इन आयतित पेन्टों में घुला तांबा नियत समय से काफी पहले ही पानी में निक्षालित हो जाता था। इससे पेन्टों की वास्तविक जीवन अवधि निर्माताओं द्वारा घोषित अवधि से काफी कम होती थी। ऐसा क्यों होता था ?

इसकी वजह बहुत सरल है। जिस प्रकार चीनी ठंडे दूध की अपेक्षा गर्म दूध में अधिक घुलती है उसी प्रकार पेन्ट में उपस्थित तांबा भी गर्म समुद्री पानी में अपेक्षाकृत अधिक निक्षालित होता है। ब्रिटेन के आसपास के सागरों के पानी का ताप कम होता है जबकि भारतीय सागरों के पानी का ताप अपेक्षाकृत अधिक। इसलिये ब्रिटिश सागरों की परिस्थितियों में पेन्टों से निक्षालित होने वाले तांबे की दर अपेक्षाकृत

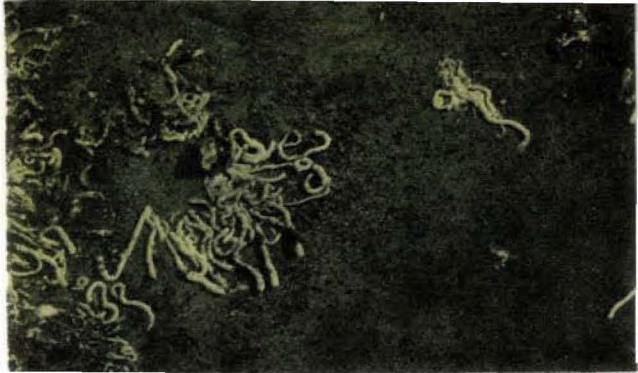




चित्र 19. तैरता हुआ बेड़ा—वास्तविक परिस्थिति में पेन्ट की जांच में सहायक

कम होती है। इस कारण पेन्ट की जीवन-अवधि अधिक होती है। इसकी तुलना में भारतीय सागरों में तांबा काफी तेजी से निक्षालित होता है। फलस्वरूप पेन्ट कम अवधि तक ही सुरक्षा प्रदान कर पाते हैं।

गर्म और ठंडे पानी पर आधारित यह उत्तर बहुत सरल था। वास्तव में मैनेजर इतनी गम्भीर समस्या के इतने सरल हल की उम्मीद नहीं करते थे। इस हल के ज्ञात होते ही उन्होंने वैज्ञानिकों से ऐसा प्रतिदूषक पेन्ट विकसित करने का आग्रह किया जो भारतीय सागरों के लिये भी उपयुक्त हो। इस प्रकार उसी दिन से स्वदेशी पेन्टों के विकास के लिये नये युग का आरम्भ हुआ।



चित्र 20. रोजिन से बने पेट पर मी महीने बाव आक्रमण का आरंभ

### स्वदेशी पेन्टों का युग

उस समय प्रचलित प्रतिदूषक पेन्ट में मुख्य रूप से एक रोजिन और एक रेजिन, फिनाँल फार्मिल्डिहाइड केन्डेन्सेट, होता था। इन दोनों पदार्थों में, जो बंधक के रूप में कार्य करते हैं, तांबा, क्यूपरस आक्साइड के रूप में मिलाया जाता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि यद्यपि तांबे के सब यौगिक विषैले होते हैं, पर केवल आक्साइड ही पेन्ट नुस्खों में काफी चुलनशील होता है। साथ ही क्यूपरस आक्साइड के रूप में प्रयुक्त किया गया तांबा काफी समय तक प्रभावी रहता है। रोजिन और फिनाँल फार्मिल्डिहाइड केन्डेन्सेट, दोनों मिलकर ही, पेन्ट का मैट्रिक्स बनाते हैं। ये पेन्ट को आवश्यक क्षीमरूपन प्रदान करते हैं। पेन्ट से लेपित सतह को जब सागर के पानी में डुबाया जाता है तब उससे तांबा पानी में निष्कासित हो जाता है। पेन्ट में उपस्थित तांबे के चुलने की दर उस रेजिन पर, जो पेन्ट की मैट्रिक्स होती है, क्रांतिक रूप से निर्भर होती है। यदि तांबा तेजी से घुसता जाता है तो पेन्ट अपने उद्देश्य में असफल हो जाता है। अगर

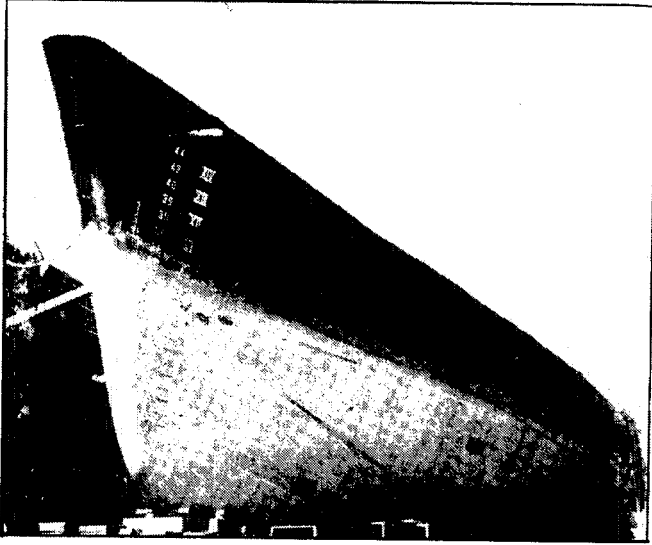


उसके घुसने की गति धीमी होती है तब पेन्ट परिदूषक जीवों के प्रति कम विश्वास हो जाता है। इसलिये तांबे का नियंत्रित निष्कालन केवल उसी समय प्राप्त किया जा सकता है तब दोनों रेजिनें, विष के साथ समुचित तरीके से संतुलित होती हैं। परन्तु रेजिन के विपरीत रोजिन तांबे के साथ ही सागर के पानी में घुलता रहता है। इस प्रकार मैट्रिक्स में से रोजिन की मात्रा का लगातार ह्रास होता रहता है। इस कारण पेन्ट में क्यूपरस आक्साइड की बहुत अधिक मात्रा नहीं मिलायी जा सकती क्योंकि एक बार रोजिन की मात्रा समाप्त हो जाने पर पेन्ट असफल हो जायेगा। हमारी प्रयोगशाला रोजिन की प्रकृति में तो फेर-बदल नहीं कर सकती थी परन्तु एक नये किस्म का पेन्ट अवश्य उपलब्ध करा सकती थी। और उसने ऐसा ही किया। नया पेन्ट भारतीय परिस्थितियों में नौ महीने तक सफलतापूर्वक कार्य कर सकता था परन्तु प्रयोगशाला के वैज्ञानिक संतुष्ट नहीं थे क्योंकि वे रोजिन और क्यूपरस आक्साइड को पानी में घुलने से रोकने के लिये, कुछ करने में असमर्थ थे।

### **बिनाइल: एक बरदान**

इस प्रकार के स्वदेशी प्रतिदूषक पेन्ट विकसित करने के प्रथम प्रयास में आंशिक सफलता ही मिली। वास्तव में एक ऐसे बंधक पदार्थ की आवश्यकता सामने आई जो रोजिन से बेहतर हो, पर पानी में न घुले।

इस तरह प्रचलित पेन्टों के बेहतर विकल्प के लिये खोज जारी रही। अतीत के अनुभवों से यह सीख मिल चुकी थी कि उपयुक्त पेन्ट की खोज के लिये एक महत्वपूर्ण प्राथमिक कदम था पेन्ट के गुणों की सुनिश्चित रूपरेखा बनाना। सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता यह थी कि पेन्ट लम्बी अवधि तक जहाज़ को सुरक्षा तो प्रदान करे पर उसका मैट्रिक्स जल्दी समाप्त न हो। पेन्ट के अन्य आवश्यक गुणों में परत का टिकाऊपन, चिपकने की बेहतर क्षमता, उसका संक्षारक न होना और उसकी सतह का चिकनापन आदि शामिल होते हैं। इनके साथ ही उसका लेप आसानी से चढ़ाया जा सके तथा वह जल्दी सूख जाये।



चित्र 21. विनाइल से सुरक्षित जहाज़ पंद्रह महीने बाद भी सुरक्षित

ये सब गुण विनाइल में मौजूद पाये गये। भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में उन कर्मचारियों ने भी जो रोजिन की जल घुलनशीलता से परेशान थे, विनाइल को रोजिन का उपयुक्त विकल्प पाया। वास्तव में इस रेजिन में वे सब गुण मौजूद थे जो एक प्रतिदूषक पेन्ट में मौजूद होने चाहिये। घुलनशील मैट्रिक्स किस्म के पेन्टों के विपरीत नई पीढ़ी का यह पेन्ट क्यूपरस आक्साइड की अधिक मात्रा वहन कर सकता था। उसकी परत में दरारें नहीं आतीं। विनाइल से तैयार किये गये पेन्टों की परत काफी कठोर होती है और उन्हें किसी अतिरिक्त सम्बल की जरूरत नहीं होती। साथ ही विनाइल, उस परेशान करने वाले पदार्थ, रोजिन, के साथ



भी बिना किसी कठिनाई के मिलाया जा सकता है। वास्तव में अनेक निर्माता विनाइल रेजिन में रोजिन को मिला लेते हैं। इससे पेन्ट में ताँवे के यौगिक की घुलनशीलता तथा जलमग्न सतहों पर पेन्ट की परत की जीवन अवधि बढ़ जाती है।

बढ़िया प्रतिदूषक पेन्ट बनाने के अपने प्रयासों में भारतीय वैज्ञानिकों ने विनाइल का उपयोग करने पर भी विचार किया। पर्याप्त मात्रा में विनाइल रेजिन की उपलब्धता के बारे में खोज आरम्भ हुई और देश में नये पैट्रो-रसायन उद्योगों के बड़ी संख्या में एकाएक स्थापित हो जाने के फलस्वरूप यह खोज सफल रही। उन्हें एक ऐसा प्रतिदूषक पेन्ट, जिसमें पूरे बारह महीनों तक जहाज़ों को सुरक्षा प्रदान कर सकने के लायक ताम्रविष मौजूद हो, बनाने में सफलता मिली। अब ऐसा पेन्ट बनाया जा चुका है जो वैज्ञानिकों के वादे के अनुसार लगातार पंद्रह महीनों तक सुरक्षा प्रदान कर सकता है। इस प्रकार विनाइल रेजिन नाविकों के लिये वरदान सिद्ध हुई।

### टिन ही बेहतरीन

पर वैज्ञानिक इन उपलब्धियों से भी संतुष्ट नहीं थे। वे इन पेन्टों को बेहतर बनाना चाहते थे। इस दिशा में उनकी खोज निरंतर जारी रही। जल्दी ही उन्होंने टिन के विषैले गुणों को अपने कार्य के लिये बहुत उपयुक्त पाया। वे अत्यंत प्रभावशाली थे। वैसे टिन, जिसे रसायनज्ञ स्टेनम कहते हैं, लोगों के लिये नयी वस्तु नहीं थी। आज से लगभग पांच हजार वर्ष पहले ही लोग उससे परिचित हो चुके थे। प्राचीन काल में ही ताँवे के साथ उसकी मिश्र धातुयें—कांसा और पीतल—तैयार की जा चुकी थीं। और उसका इस्तेमाल घरों में ही नहीं उद्योगों में भी होने लगा था।

टिन आमतौर से विषैली नहीं होती। पर जब वह किसी कार्बनिक पदार्थ के साथ रासायनिक तौर से सहयोग कर लेती है तब वह काफी व्यापक विषैलापन दर्शाने लगती है। टिन के ऐसे यौगिक "कार्ब-टिन"



(आर्गेनो टिन) कहलाते हैं। ये यौगिक बढ़िया कीटनाशी, कवकनाशी और प्रतिदूषक गुण दर्शाते हैं। इन वैज्ञानिकों ने इन यौगिकों का गहन अध्ययन किया है। उन्नीस सौ साठ के दशक में इन यौगिकों से व्यावसायिक स्तर पर पेन्ट तैयार किये गये। यह वही समय था जब भारतीय नौसेना ने विनाइल पेन्टों को इस्तेमाल करना स्वीकार कर लिया था।

इस बारे में नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला के वैज्ञानिक सतर्क थे। उन्हें कार्ब-टिन के प्रतिदूषक गुणों के खोज की भनक लग गई थी। इसलिये शीघ्र ही उन्होंने भी कार्ब-टिन यौगिकों पर आधारित पेन्ट बनाने के प्रयास आरम्भ कर दिये थे। इस बारे में प्रथम कार्य था ऐसे यौगिक की खोज जो भारतीय सागरों के लिए सर्वाधिक उपयोगी पदार्थ हो। आखिर ऐसा यौगिक मिल ही गया। यह था "टी. बी. टी. ओ." अर्थात् ट्राइब्यूटाइल-टिन आक्साइड जिसे व्यावसायिक तौर पर "बिस आक्साइड" भी कहते हैं।

## सुरक्षा के साथ पालिश भी

उन्नीस सौ सत्तर के दशक के अंतिम वर्षों में कार्ब-टिन प्रतिदूषक यौगिकों के, जो स्वयं पालिश करने वाले प्रतिदूषक यौगिक कहलाते थे, बारे में एक नयी धारणा ने जन्म लिया। इन यौगिकों में टिन रासायनिक रूप से, एक पॉलीमर श्रृंखला से जुड़कर जैवसक्रिय पदार्थ (बायोएक्टिव मैटीरियल) बनाती है। शीघ्र ही संसार भर में जैवसक्रिय पॉलीमरित पेन्टों का व्यावसायिक पैमाने पर उत्पादन आरंभ हो गया।

भारत में 1980 के दशक के आरम्भिक वर्षों में इन रक्षक पेन्टों के बारे में एक नया दृष्टिकोण अपनाया जाने लगा। नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला में भी एक कार्ब-टिन सह-पॉलीमर विकसित किया गया और उसे एक्रिलेट पॉलीमर के साथ रासायनिक रूप से सफलता पूर्वक संयुक्त कराया गया। परिणामस्वरूप, जो पॉलीमर प्राप्त



हुआ, उसे लेप के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता था। परीक्षण के तौर पर उसे अनेक नौसैनिक जहाज़ों पर चढ़ाया गया और ये परीक्षण सफल सिद्ध हुये।

वैसे संसार भर के नाविक कार्ब-टिन पॉलीमर को प्रसन्नता से व्यापक रूप से प्रयुक्त करते हैं क्योंकि इससे जहाज़ों के जलमग्न अंगों को लम्बे समय तक सफलता पूर्वक सुरक्षा प्रदान की जा सकती है। इस प्रकार परेशान जहाज़ कर्मचारियों को वह राहत मिल गई जिसकी उन्हें बहुत आवश्यकता थी। इन पेन्टों के सुरक्षा प्रदान करने के तरीके प्रचलित पेन्टों तथा विनाइल प्रतिदूषक पेन्टों के तरीकों से एकदम भिन्न हैं। इसलिये उनकी व्याख्या जरूरी है।

### हाराकीरी

“हाराकीरी” जापानी भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ है “अपने देश अथवा अपने आत्मसम्मान के लिये अपने प्राण अर्पण कर देना”। नये कार्ब-टिन पॉलीमर भी जहाज़ों को सुरक्षा प्रदान करने हेतु यही करते हैं। प्रचलित पेन्ट अपने में निहित विषैले पदार्थ को नियमित दर से स्रवित करके जहाज़ों को सुरक्षा प्रदान करते हैं। परिणामस्वरूप, पेन्ट में से विषैले पदार्थ के अधिकांश भाग के निकल जाने पर उसमे प्रायः कुछ भी विषैलापन नहीं बचता।

परन्तु कार्ब-टिन पॉलीमरों के साथ ऐसा नहीं होता। यहां पॉलीमर की सतह सागर के पानी के साथ प्रतिक्रिया करती है। इससे पॉलीमर बंधक का जलविघटन हो जाता है। कार्ब-टिन पॉलीमर का एक भाग सागर के पानी में मुक्त हो जाता है। वह परिदूषक जीवों को सतहों पर परत बनाते समय ही मार देता है। पेन्ट के लेप की बची हुई अवक्षयित परत में पानी को आकर्षित करने का गुण होता है। उसके बंधक पदार्थ में कोई संरचनात्मक क्षमता नहीं होती। इसलिये बहता हुआ समुद्री पानी उसे आसानी से हटा देता है।



पॉलीमर पेन्ट की प्रथम परत के हट जाने का यह अर्थ नहीं होता कि पेन्ट प्रभावी ही नहीं रहता। उसकी नयी परत उतने ही प्रभावशाली ढंग से प्रतिदूषक क्रिया करने लगती है। इस परत के भी हट जाने पर तीसरी नयी परत सामने आ जाती है और प्रतिदूषक क्रिया जारी रहती है। यह कहा जा सकता है कि कार्ब-टिन पेन्ट की प्रत्येक परत हाराकीरी करती है।

इस प्रकार एस. पी. सी. पेन्ट ने जहाजों की तली को सुरक्षा प्रदान करने हेतु एक नया पदार्थ बना दिया है जो एक सीमा तक सतह को घर्षणरहित भी बना सकता है। इस प्रकार नये पेन्ट से ईंधन की बचत भी होने लगी। यहां इस बात पर बल दिया जा सकता है कि स्वपॉलिश करने वाला पेन्ट जहाज की सतह को चिकनी और बेहतर बना देता है।

### सीमा में रहना आवश्यक

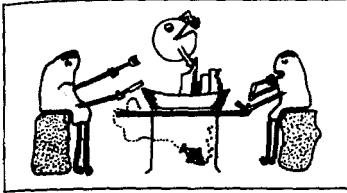
बार्नेकलों और युद्ध पोतों के बीच लड़ाई हमेशा मानव-निर्मित पर्यावरण में लड़ी जाती रही है। बार्नेकलों को नष्ट करने हेतु इस पर्यावरण का निर्माण पानी में विष के मुक्त होने से होता है। पर पानी में विष छोड़ने से सागर में रहने वाले लाभकारी जीव-जन्तु भी प्रभावित हो सकते हैं क्योंकि संहारक रसायन अपना कार्य करते समय जीव-जन्तु में भेद नहीं करते। अनेक देश, जिनका आर्थिक समुद्री क्षेत्र (इकोनामिक ओशन ज़ोन) बहुत सीमित है इस बात से चिंतित हैं कि इस क्षेत्र में विषों की सांद्रता मछलियों और शैलफिशों के लिये हानिकारी सिद्ध हो सकती है। इसी कारण ये देश अपने आर्थिक समुद्री क्षेत्रों में प्रतिदूषक पेन्टों को एक सीमा के भीतर ही इस्तेमाल करना चाहते हैं। पारिस्थितिकी और मानव स्वास्थ्य में घनिष्ठ संबंध होता है इसलिये कुछ पर्यावरण रक्षक एजेंसियां भी सागर के पानी में विष के स्तर को न्यूनतम रखना चाहती हैं। परन्तु इन प्रतिबंधों के लगाने से पेन्ट की जीवन अवधि कम हो सकती है और नाविकों के शत्रुओं के हाथ मजबूत हो सकते हैं।





अतः यह विचार उभर कर सामने आ रहा है कि इन विषैले पेन्टों पर स्वयं ही प्रतिबंध लगाये जायें। अब ऐसे संश्लेषित पेन्ट विकसित करने के प्रयत्न किये जा रहे हों जो प्रतिदूषक तो हों, पर जहरीले न हों। इन पेन्टों के लोपों की सतह ऐसी हों जिन पर से बार्नेकलों को बिना किसी विशेष प्रयास के हटाया जा सके। प्रतिदूषकों को सतह पर जमने दीजिए; यदि जरूरी होगा तो उन्हें गोताखोर अथवा जलमग्न उपकरण आसानी से हटा देंगे। उसके लिये जहाज़ को गोदी पर लाने की जरूरत नहीं है। अगर जहाज़ सागर में जायेगी तो परिदूषण जरूर होगा। इसलिये परिदूषण को तो रोका नहीं जा सकता पर हम जरूरत पड़ने पर उसे हटा अवश्य सकते हैं।

युद्ध—संक्षारण के विरुद्ध



## आंतरिक शत्रु

परिदूषक बलों पर काबू पा लिया गया है। मसलों की शारीरिक शक्ति युद्ध करने वाले बार्नेकलों के गोले और ट्यूबवर्मों के कंगूरे उन जहाजों पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ सके जिनकी रक्षा नये पेन्टों से की गई थी। दूसरे शब्दों में प्रमुख युद्धक टैंकों (मसल, बार्नेकल और ट्यूबवर्म—एम. बी. टी.) के प्रहार बेकार गये। नौसेना के वास्तुशिल्पी प्रसन्न हो गये, जहाजों के निर्माता खुशी से नाचने लगे और जहाजों के कप्तानों ने राहत की सांस ली। पर अफसोस! उनकी यह खुशी क्षणिक थी।

जब सागरों में विचरण करने वाली जहाजें अपनी यात्राओं के बाद लौट कर आते तब उनके तली के निचले भाग तो साफ रहते पर ऊपरी बाँचे पर भद्दे भूरे रंग के धब्बे होते थे। जहाजों के पेन्ट की परत क्षतिग्रस्त होती और उसके नीचे की धातु संक्षारित। इस परिस्थिति में हानि पहुंचाने वाला शत्रु कोई बाहरी जीव नहीं था—जैसा परिदूषण के समय था—वरन् जहाजों में ही निर्मित होता था।

### संक्षारण यानी सामान्य समस्या

संक्षारण केवल जहाजों तक ही सीमित नहीं है। वह गृहणी की हांडी,

किसान के हल और जवान की जीप, सबको समान रूप से प्रभावित करता है। लोहे के संक्षारण को आमतीर से "जंग" कहा जाता है। वैसे सब धातुयें विभिन्न मात्राओं में संक्षारण से प्रभावित होती हैं। केवल "उत्कृष्ट" (सोबेल) धातुयें—सोना और प्लेटिनम—ही अपवाद हैं।

संक्षारण के फलस्वरूप धातु अपनी ऑक्साइड में बदल जाती है। वायुमंडल में उपस्थित ऑक्सीजन के कुछ अणु धातु से टकराते हैं और ऑक्साइड की पहली परत बनाते हैं। ऑक्साइड की यह परत इतनी पतली होती है कि वह अपने नीचे स्थित लोहे और धातु में उपस्थित ऑक्सीजन के अणुओं के बीच और अंतःक्रिया में बाधा उत्पन्न नहीं करती। उस परत में से धातु के परमाणु ज्यादा से ज्यादा संक्षारण उत्पन्न करते हैं। यह क्रिया निरंतर चलती रहती है और धातु जीव ही चूर्ण में बदल जाती है।

नैसर्गिक क्षतरनाक ढंग से जहाजों से लटके रह कर, अपने दुर्भाग्य पर दुखी होते हुये, संक्षारण को कोसते हुये, संक्षारित सतह पर पेन्ट की नवी परत चढ़ाता रहता है। संक्षारण, जो सार्वभौमिक है, सागर के आसपास विशेष रूप से तीव्र होता है। समुद्री जल अपने सब रूपों में, धातुओं को उस हद तक संक्षारित कर देता है जिस तक वे बल या आकषण में कहीं भी संक्षारित नहीं होती। सागर के ऊपर की वायु तो संक्षारक होती है, तरंगों के झेद की जल बुंदक्रिया उससे कहीं अधिक संक्षारक होती हैं जबकि लवण युक्त समुद्री-जल अन्य वस्तुओं की तुलना में सबसे अधिक संक्षारक होता है। इस प्रकार नाविक समुद्री संक्षारण से पीड़ित होते ही रहते हैं—चाहे जहाज पानी में रहे अथवा सागर से बाहर। इस दुष्ट दुष्मन—धातु संक्षारण के कैंसर—से लीह और अलीह, दोनों प्रकार की धातुयें समान रूप से प्रभावित होती हैं। इसलिये जहाजों के ढांचों, मशीनों, बंदरगाहों की इमारतों, सबका समय-समय पर निरीक्षण करते रहना जरूरी होता है। जहाजों को मरम्मत के लिये जल्दी-जल्दी मुष्क गोदी पर लाना पड़ता है और अगर जरूरी होता है तब संक्षारित प्लेटों और अन्य अंगों को बदलना भी पड़ता है।



चित्र 22. संक्षारण पीड़ित एक जहाज़

संक्षारण कब आरंभ होता है, इसका प्रायः पता नहीं चल पाता। वह एकदम झुपचाप धातुओं को प्रभावित करने लगता है और धीरे धीरे उनके अंदर प्रविष्ट होता जाता है। इसलिये संक्षारण को रोकने की दिशा में पहला कदम है उसका पता लगाने की तकनीकें ज्ञात करना।

### इस कैसर का उपचार

इस प्रकार नौसैना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला का कार्य पानी के नीचे रहने वाले सूक्ष्मजीवों के विरुद्ध युद्ध करने के अतिरिक्त जहाज़ों को संक्षारण से भी बचाना है। और इस बार युद्ध एक ऐसे शत्रु के



चित्र 23. संभारण के प्रभाव से पूर्णतः नष्ट एक मोटरगाड़ी

विरुद्ध है जो आक्रमण करते समय दिखायी नहीं देता। पर उसके द्वारा किये जाने वाली हानि संचित होती रहती है और उसका पता उस समय चलता है जब उसे रोकने की दृष्टि से बहुत देर हो चुकी होती है। इसलिये इस प्रयोगशाला ने संभारण का पता लगाने की तकनीकों की खोज की, संभारण से होने वाली हानि का ब्यौरा तैयार किया और अंत में उसे रोकने के उपाय ढूँढ निकाले।

नमकयुक्त वायु और समुद्री तटों की महीन फुहारों के वातावरण में संभारण वर का अध्ययन करने के लिये नौसेना के महत्वपूर्ण बंदरगाहों में बड़ी संख्या में समुद्री उद्भासन केन्द्र (मिरीन एक्पोजर स्टेशन) स्थापित किये गये। प्रयोगशाला में निर्मित समुद्री परिस्थितियों और जहाज़ों के निकट पायी जाने वाली जल की तेज उथल-पुथल की हालातों में संभारण वरें ज्ञात की गईं। इस संबंध में उपलब्ध आंकड़ों के विशाल भंडारों से यह ज्ञात हुआ कि स्थिर परिस्थितियों में संभारणजन्य धातु ह्रास की दर 1.5 मिलीमीटर प्रतिवर्ष होती है। पर गतिशील परिस्थितियों में यह बढ़कर 6 मिलीमीटर प्रतिवर्ष हो जाती है। इतने बड़े पैमाने पर



होने वाली हानि का अर्थ है देश की नौसेना को स्वस्थ और युद्ध के लिये तैयार बनाये रखने के लिये हर पांच वर्ष में एक नये जहाज़ का समावेश। संक्षारण के फलस्वरूप पांच वर्ष में एक सम्पूर्ण जहाज़ ही पूरी तरह बेकार हो जाता है। क्या हम इतनी बड़ी हानि उठा सकने में समर्थ हैं? नहीं! निश्चय ही नहीं! लेकिन अब नौसेना रासायनिक और धातुकर्मीय प्रयोगशाला अपने गहन अध्ययनों और अनुसंधान के बाद यह दावा करती है—“हमें जहाज़ दीजिये हम हमेशा के लिये उसे संक्षारण से सुरक्षित रखेंगे।”

### प्राथमिक सुरक्षा

जहाज़ों की धातु की रक्षा का वास्तविक कार्य जहाज़ बनाने वाले कारखाने से ही आरम्भ हो जाता है। इन कारखानों में बड़ी संख्या में लोहे की चादरें, जिनकी मोटाई 10 से 30 मिलीमीटर होती है, आती हैं। ये चादरें विभिन्न इस्पात कारखानों में बनायी जाती हैं और रेल द्वारा लायी जाती हैं। जब ये कारखानों में पहुंचती हैं तब इनके ऊपर धातु ऑक्साइड की एक मोटी परत, “मिल स्केल”, चढ़ी होती है। बाद में इन पर जंग लगने लगता है। जंग लगने की क्रिया उस समय और तीव्र हो जाती है जब चादरों को समुचित आकार देने के लिये ऑक्सीएसीटिलीन ज्वाला से काटा जाता है।

जहाज़ बनाने वाले कारखाने का पहलना काम होता है इन चादरों पर से मिल स्केल हटाना। इस स्केल को उतारने का केवल एक ही तरीका होता है—चादरों पर इस्पात की छोटी गोलियों का तेज प्रवाह। इस प्रवाह के फलस्वरूप चीमड़ मिल स्केल, जो चादरों पर बुरी तरह जकड़ी होती है, अलग हो जाती है। इससे चादर साफ तो हो जाती है, पर अब यदि उसे सही तरीके से बचाया नहीं जाता, तो उस पर जंग लगने की आशंका बहुत बढ़ जाती है।



इस स्तर पर नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला जहाज़ निर्माताओं की मदद के लिये आगे आई। उसने साफ की हुई धातु चादर को जंग से बचाने के लिये एक शक्तिशाली प्राइमर ढूँढ निकाला। यह प्राइमर जहाज़ निर्माण की सम्पूर्ण क्रिया के दौरान चादर की भलीभाँति रक्षा करता है। अब इस प्राइमर को भारत के सब बड़े जहाज़-निर्माण कारखानों ने स्वीकार कर लिया है। उसकी वजह से उन्हें बहुत राहत मिली है।

### सुरक्षा के लिये पंचशील

जहाज़ निर्माण के समय धातु चादर को सुरक्षा प्रदान करने के जो प्रयत्न किये जाते हैं, उनसे केवल निर्माण के दौरान ही धातु की रक्षा हो पाती है। एक बार जहाज़ के सागर में आ जाने पर वह कवच संक्षारण से रक्षा करने के लिये रामबाण साबित नहीं होता। जहाज़ की जल में डूबी रहने वाली तली की, एक नई पेन्ट व्यवस्था द्वारा रक्षा करना जरूरी हो जाता है। और सुरक्षा प्रदान करने के पांच सिद्धान्त, सुरक्षा के लिये पंचशील के समान हैं—(1) धातु के प्रति बढ़िया आसंजन, (2) जल के प्रति निम्न पारगम्यता, (3) बढ़िया यांत्रिक गुण, (4) रसायनों के प्रतिरोध, और (5) प्रतिदूषक पेन्ट से सामंजस्य।

प्रतिसंक्षारण पेन्टों का विकास करते समय इन सिद्धान्तों को याद रखना चाहिये। भारतीय नौसेना को जहाज़ों पर करने वाले पेन्ट ब्रिटेन की नौसेना से विरासत में मिले थे। ये पेन्ट जो “ए. डी. एम. ए. आर. प्रतिसंक्षारण पेन्ट” कहलाते हैं उन्हीं दोषों से युक्त थे जो विदेशों में विकसित प्रतिदूषक पेन्टों में मौजूद थे। ये पेन्ट उष्ण कटिबंधीय पर्यावरण में बिल्कुल प्रभावी नहीं थे। इसलिये नौसेना रासायनिक और धातुकर्मीय प्रयोगशाला ने पहले बढ़िया रेजिनों की मदद से इन पेन्टों की जलमग्न जीवन अवधि बढ़ाने के प्रयत्न किये। एक ऐसा पेन्ट विकसित किया गया



जिसकी जीवन अवधि नौ महीने (प्रतिदूषक पेन्टों की जीवन अवधि के बराबर) थी।

जब प्रतिदूषक पेन्टों की जीवन अवधि में वृद्धि हुई तब प्रति संक्षारण पेन्टों की जीवन अवधि बढ़ाने की मांग उठाना भी स्वाभाविक था। वह जहाज़ किस काम की जो परिदूषकों से तो बारह महीनों तक सुरक्षित रह सके पर जिसे संक्षारण दूर करने के लिये जल्दी ही गोदी पर लाना पड़े। जब परिदूषण के विरुद्ध युद्ध में विनाइल का आगमन हुआ तब यह मुझाव सामने आया कि संक्षारण का मुकाबला करने के लिये भी विनाइल का उपयोग किया जाये। इस बारे में प्रयोग किये गये और पॉलीविनाइल क्लोराइड के कोपॉलीमरों और पॉलीविनाइल एसीटेट से उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुये। शीघ्र ही एक नया प्रतिसंक्षारण पेन्ट तैयार कर लिया गया जिसकी परत मजबूत, लचीली और सब रसायनों के प्रतिरोधी थी। प्रयोगशाला द्वारा इस पेन्ट के विकास से यह बात स्पष्ट हो गई कि देश में ही उपलब्ध सामग्री से बढ़िया पेन्ट तैयार किया जा सकता है। यद्यपि यह पेन्ट अन्य देशों द्वारा विकसित किये गये पेन्टों की तुलना में (जो सब प्रकार की आवश्यकतायें पूरी कर सकते हैं) हीन हैं, परन्तु इसके निर्माण के लिये किसी वस्तु का आयात नहीं करना पड़ता था। अन्य देशों में प्रतिसंक्षारण पेन्ट तैयार करने के लिये कोल-टार इपोक्सी का उपयोग किया जाता था।

देशी विनाइल पेन्ट में एक बड़ी त्रुटि थी। उसकी परत चढ़ाने से पहले जहाज़ों की सतह को समुचित तरीके से भलीभांति तैयार करना पड़ता था। इसलिये गोदी कर्मचारियों को बहुत कठोर नियमों का पालन करना पड़ता था। हर गोदी के लिये ऐसा करना संभव नहीं था।

## यूरेका-यूरेका

अतः ऐसे पेन्ट की आवश्यकता सामने आयी जिसकी परत के समुचित

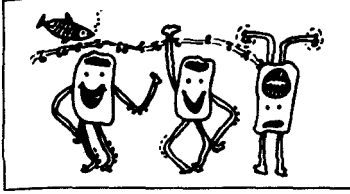


आसंजन के लिये जहाज़ की सतह को इतनी सावधानी से तैयार करने की जरूरत न हो। अब प्रयोगशाला में एक नया पेन्ट विकसित किया गया। यह पेन्ट विनाइल पर आधारित नहीं था। वह कोयला क्लोरोनित रबर रेजिन था। क्लोरोनित रबर रेजिन में सतह से भली प्रकार चिपकने का गुण होता है।

इसे किसी भी उस सतह पर चढ़ाया जा सकता है जिस पर से पहले जंग हटा दिया गया हो। जंग हटाने के लिये किसी भी उपलब्ध तकनीक का उपयोग किया जा सकता है। उसके लिये सतह को तार के मामूली ब्रश से रगड़ा जा सकता है अथवा उसके संक्षारित भागों को खुरचा जा सकता है। इसके बाद जब पेन्ट किया जाता है तब उसकी परत सतह पर पक्की तौर से चिपक जाती है।

उक्त माध्यम पर किये गये अनुसंधानों के फलस्वरूप थिक्सोट्रापिक पेन्ट विकसित हुये। इन पेन्टों में निम्न श्यानता किस्म के रेजिन और अन्य एडीटिव इस्तेमाल किये जाने लगे। इस पेन्ट प्रणाली ने जलमग्न सुरक्षा के नये द्वार खोल दिये। इस नयी प्रणाली में सतह की प्रतिरोधिता बढ़ाने के लिये पेन्ट की परत की मोटाई भी बढ़ायी जा सकती है।

अब जहाज़ों पर एल्यूमीनियम पिगमेन्ट का उपयोग करने वाले उच्च शक्ति के पेन्टों का भी लेप किया जा सकता है। खड़ी सतहों पर इन पेन्टों की मोटी तह चढ़ाने पर भी वह न तो उखड़ती है और न ही झूलती है। क्लोरोनित रबर आधारित प्रतिसंक्षारण पेन्ट सब प्रकार के प्रचलित और नये प्रतिदूषक पेन्टों से सहज की सामंजस्य स्थापित कर लेती हैं। इस प्रकार बार्नेकल और संक्षारण के साथ युद्ध में, अंततः मनुष्य की ही विजय हुई।



## जंग की वीर गाथा

वीरों का यशगान सर वाल्टर स्कॉट जैसे प्रसिद्ध इतिहासकारों ने भी किया है। उनकी बहादुरी और पौरुष का कोई मुकाबला नहीं है। पर एक वीर ऐसा भी है जो अब तक अधिकांश लोगों से अज्ञात है और जिसकी वीरता के गीत किसी ने भी नहीं गाये। यह अल्पज्ञात बहादुर है जंग—वह जंग जो कितने ही वर्षों से संक्षारण से निरंतर युद्ध करके समुद्र में विचरण करने वाली सुन्दर जहाज़ों की रक्षा करता रहा है।

यह वीर—जंग का वीर—विशाल सागरों में तथा जमीन के भीतर गहरे स्थानों पर लोहे को संक्षारण से बचाने के लिये निरंतर घमासान युद्ध करता रहा है। रूसी पुस्तकों में इसका उल्लेख “रक्षक” के रूप में किया जाता है जबकि यर्थाथवादी अंग्रेज इसे “कैथोडीय सुरक्षा व्यवस्था” (कैथोडिक प्रोटेक्शन सिस्टम) कहते हैं। यदि “युद्ध” उन क्षेत्रों में होता है जहां जल उपस्थित होता है तब जंग रूपी वीर योद्धा सार्वभौमिक सुरक्षा प्रदान करता है। इस प्रकार कैथोडीय रक्षी व्यवस्था जहाज़ की तो चाहे, वह सागर में रहे अथवा उससे बाहर, निश्चित रूप से रक्षा करती है पर मोटर कार और रेल पुलों की रक्षा नहीं कर सकती।



## उन्होंने कहा “आक्रमण करो”

शत्रु को देखते ही वीरों के मुंह से जो शब्द निकलते हैं वे हैं “आक्रमण करो”। ये ही शब्द आधुनिक वीर, जंग, के भी गुरुमंत्र हैं। इस वीर द्वारा संक्षारण के शत्रु के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने का तरीका भी आक्रमण करने का है। निश्चय ही इस स्थिति में आक्रमण उस विद्युत आवेश की मदद से किया जाता है जो सुरक्षा प्रदान करने वाली व्यवस्था द्वारा उत्पन्न किया जाता है। यह आवेश संक्षारण धारा का मुकाबला करता है।

संक्षारण एक वैद्युत-रासायनिक क्रिया है। वह किसी धातु में उसी समय कार्य करती है जब कोई चालक माध्यम मौजूद होता है। यह माध्यम ताजा पानी, समुद्री पानी अथवा भूमि में मौजूद नमी भी हो सकती है। संक्षारण के प्रति सर्वाधिक संवेदन धातु है लोहा—जिसका उपयोग भी सबसे अधिक किया जाता है।

हम लोहे को एक अकेली धातु के रूप में देखते हैं, पर वास्तव में उसमें अनेक अपद्रव्य मौजूद होते हैं। ये अपद्रव्य दिखायी नहीं देते क्योंकि ये अत्यंत सूक्ष्म अवस्था में मौजूद होते हैं। और हर सूक्ष्म अपद्रव्य कुछ विद्युत आवेशों को जन्म देता है और इलेक्ट्रान मुक्त करता है। इन इलेक्ट्रानों को ग्रहण करता है धातु के निकट का भाग। धातु का वह भाग जो इलेक्ट्रान खोता है “एनोड” कहलाता है और जो ग्रहण करता है “कैथोड”। एनोडीय क्षेत्र इलेक्ट्रान खोता है इसलिये उसी पर संक्षारण होता है। अपद्रव्य पूरी धातु में फैले होते हैं इसलिये इस प्रकार के एनोडीय और कैथोडीय क्षेत्र अनेक स्थलों पर उत्पन्न हो जाते हैं। इससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अगर लोहा सब अपद्रव्यों से मुक्त कर दिया जाये तब संक्षारण न्यूनतम हो जायेगा। पर व्यावहारिक जीवन में ऐसा कर पाना संभव नहीं होता। अब अगर लोहे में उत्पन्न होने वाले आवेश जंग उत्पन्न करते हैं तब जंग द्वारा उत्पन्न होने वाला आवेश उसे रोकेगा।



एक अकेली धातु में उत्पन्न होने वाले संक्षारक सेल पूरी धातु में फैले होते हैं और अधिक संक्षारण उत्पन्न करते हैं परन्तु यह संक्षारण उसकी तुलना में कुछ भी नहीं हैं जो दो भिन्न-भिन्न धातुओं को आपस में जोड़ने और एक ही इलेक्ट्रोलाइट में रखने से उत्पन्न होता है। इस बारे में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि उस समय परिणाम बहुत खतरनाक हो जाते हैं। इन धातुओं में से एक ही बचती है और वह भी दूसरी धातु, जो पूरी तरह घुल जाती है, की कीमत पर।

उक्त खोज एक अमेरिकी करोड़पति ने भारी कीमत चुका कर की थी। इस अमेरिकी करोड़पति ने एक ऐसी धातु से जो संक्षारण का मुकाबला कर सकती है, एक आदर्श जहाज़ बनाने का निश्चय किया था। यह बात उन्नीस सौ चालीस के दशक की है जब जर्मन वासियों ने एक मिश्रधातु की खोज की थी जो बाद में "जर्मन सिल्वर" के नाम से मशहूर हुई। यह मिश्रधातु अपनी रजत सदृश्य चमक बनाये रखकर संक्षारणरोधी गुण दर्शाती है। उस करोड़पति ने दुनिया भर के सर्वोत्तम वास्तुशिल्पियों और जहाज़ निर्माताओं को बुलाकर इसी जर्मन सिल्वर से अपने स्वप्नों की जहाज़ तैयार कराया और उसका नामकरण किया *कॉल आफ दि सी*।

जहाज़ बनकर तैयार हो गया। उसके कील और ढांचा चमचमाते सफेद रंग के थे। उन पर संक्षारण के बदसूरत धब्बे नहीं थे। जहाज़ का अंदरूनी भाग उसकी बाहरी चमक-दमक के ही अनुरूप था। उसमें एक दीवार से लेकर दूसरी दीवार तक कालीन बिछे थे और जगह-जगह पर पालिश की हुई महोगनी काष्ठ लगा हुआ था। अंत में जहाज़ को सागर में उतारने का दिन भी आ गया। जहाज़ को थामे रहने वाले ब्लाक हटा दिये गये। एक सम्भ्रांत महिला ने शेम्पेन की बोतल खोली। हर व्यक्ति सांस थाम कर उस सुन्दर जहाज़ का पानी में उतरने का दृश्य देखने के लिये आतुर हो उठा।

परन्तु यह क्या? जहाज़ का पेन्दा उन्हीं ब्लाकों पर ही विघटित हो गया जिन पर वह टिका हुआ था। अगर उस समय शार्लक होम्स जैसे



किसी महान जासूस से इसका कारण पूछा जाता तो वह कहता 'प्रिय वाटसन! इसका जवाब तो बहुत सरल है।' यद्यपि जहाज़ जर्मन सिल्वर का बना हुआ था पर उसमें रिबेट तांबे के लगे हुये थे। इसलिये ऐसा तो होना ही था। दो असमान धातुयें नम समुद्री-जल के वातावरण में आपस में मिली हुई थीं। इसलिये संक्षारण तो अवश्यम्भावी था। वही हुआ और उसके फलस्वरूप तांबे के रिबेट नष्ट हो गये। और इस प्रकार कॉल आफ दि सी तट पर ही रह गया और सागर के देवता 'वरुण' से दुहाई करता रहा।

### स्वयं की बलि चढ़ाकर दूसरे की रक्षा

द्विधात्विक संक्षारण के सिद्धान्त को आरम्भिक उन्नीसवीं सदी के महान रसायनज्ञ सर हम्फ्री डेवी ने लाभकारी कार्यों के लिए प्रयुक्त किया था। सर्वप्रथम उन्होंने लकड़ी के जहाज़ बनानेवालों को यह समझाया कि तांबे की शुद्धता अत्यंत उच्च रहनी चाहिए। उसके बाद उन्होंने परिदूषण रोकने के लिये इस्तेमाल किए जाने वाले तांबे के कवच को तांबे की ही कीलों से जड़ने की सलाह दी। अंत में जब उन्होंने पाया कि तांबा सागर में संक्षारित हो जाता है, तब उन्होंने तांबे की कवच में जस्ते के बटन लगाने की सलाह दी। इससे जस्ते के बटन तो घुल जाते थे, पर तांबा संक्षारित नहीं होता था।

कैथोडीय सुरक्षा का सिद्धान्त भी यही है। कैथोडीय सुरक्षा प्रणाली में दो असमान धातुओं को एक ही इलेक्ट्रोलाइट में आपस में जोड़ दिया जाता है। इससे एक धातु घुलकर दूसरी को बचा लेती है। विद्युतरसायनज्ञों (इलेक्ट्रोकेमिस्ट) के अनुसार संक्षारित होने वाली धातु कम उत्कृष्ट (नोबल) होती है और वह धातु जिस की रक्षा होती है वह अधिक उत्कृष्ट। इस प्रकार कम उत्कृष्ट धातु स्वयं समाप्त होकर अधिक उत्कृष्ट धातु, जो लोहा अथवा तांबा हो सकता है, की रक्षा करती है।



## राम को लूट कर श्याम को धनी बनाना

वे लोग जिन्हें कर्ज लेने की आदत पड़ जाती है, अक्सर कर्ज अदा करने के लिए भी कर्ज लेते हैं। यद्यपि अनेक व्यक्ति इसमें विश्वास नहीं रखते पर विडम्बना यह है कि धातुयें अपनी रक्षा इसी सिद्धान्त के अनुसार करती हैं। मजेदार बात यह है कि ऐसा करते समय वे अपने अपद्रव्यों से छुटकारा पा जाती हैं। जब रसायनज्ञों को यह ज्ञात हुआ कि एक धातु की बलि चढ़ाकर दूसरी को बचाया जा सकता है, तो वे इस खोज में लग गए कि बलि चढ़ाने के लिए कौन सी धातु सबसे उपयुक्त होगी।

सब जहाज निर्माताओं का प्रथम उद्देश्य था जहाज के लोहे के तले को बचाना। इस प्रकार लोहा एक उत्कृष्टतर धातु बन गई जिसे बचाने के लिए कम उत्कृष्ट ऐसी धातुओं की खोज की जानी थी जिनमें लोहे को बचाने की क्षमता हो। इस बारे में पहली आवश्यकता थी हर धातु की संक्षारणरोधी क्षमता (कोरोजन पोटेन्शल) का अध्ययन करना। पर संक्षारणरोधी क्षमता एक आपेक्षिक गुण है जिसकी परिभाषा इलेक्ट्रोड के संदर्भ में ही दी जा सकती है। इस प्रकार संक्षारणरोधी क्षमता का किसी मानक इलेक्ट्रोड के संदर्भ में, जो चांदी/सिल्वर क्लोराइड, संतुप्त कैलोमल अथवा जस्ता का हो सकता है, ही ज्ञात की जा सकती थी। यद्यपि इन मानक इलेक्ट्रोडों के संदर्भ में धातु की संक्षारणरोधी क्षमताओं के मान भिन्न-भिन्न हो सकते हैं पर उनकी प्रवृत्ति एक जैसी ही रहती है। जहाजों के तलों की रक्षा के लिए जिन तीन धातुओं का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है वे हैं मैग्नीशियम, जस्ता और एल्यूमीनियम। इसलिए इन्हीं धातुओं से इलेक्ट्रान लेने की योजना बनाई गई।



## कनाडा ने पहल की

जहाज़ों की रक्षा करने में कैथोडीय सुरक्षा सिद्धान्त का उपयोग करने में पहल करने का श्रेय न तो यूरोप को जाता है और न ही संयुक्त राज्य अमेरिका को। यूरोप में विज्ञान का पुनः जागरण और पुनरोत्थान हुआ। इंग्लैंड अपने वैज्ञानिकों और आविष्कारों की लम्बी सूचियों पर गर्व कर सकता है। अमेरिका में भी वैज्ञानिकों और आविष्कारों की कमी नहीं थी। परन्तु इनमें से किसी भी देश ने कैथोडीय सुरक्षा सिद्धान्त की मदद से जहाज़ों की रक्षा करने के व्यावहारिक पक्ष पर विचार नहीं किया। सर्वप्रथम ऐसा करने का श्रेय कनाडा को जाता है।

यह सच है कि सर हम्फ्री डेवी ने 1824 में यह सिद्ध कर दिखाया था कि जस्ता के एनोड का उपयोग करके तांबे की रक्षा की जा सकती है, पर उनकी इस खोज का महत्व उस समय समाप्त हो गया जब जहाज़ निर्माण के लिए लकड़ी के स्थान पर लोहे का उपयोग किया जाने लगा। वास्तव में लोहे से बनाई गयी जहाज़ों की रक्षा के लिए इस सिद्धान्त के महत्व पर कभी पूरा ध्यान ही नहीं दिया गया।

कैथोडीय सुरक्षा के क्षेत्र में विस्तृत अग्रणी कार्य करने के पश्चात कनैडियन वैज्ञानिकों ने सुरक्षा सिद्धान्तों को कार्यान्वित करना शुरू कर दिया और वर्ष 1854 तक कनैडियन नौसेना इस तकनीक से 50 युद्ध पोतों की रक्षा कर चुकी थी। इस प्रकार ब्रिटेन में खोजे गये सिद्धान्त का अंध महासागर के उस पार के वैज्ञानिकों ने सफलतापूर्वक व्यावहारिक उपयोग कर दिखाया। शीघ्र ही अन्य देश भी ऐसा करने लगे। और जंग के वीर ने प्रमुख देशों में निरीह जहाज़ों की रक्षा करते हुए, अपनी अविस्मरणीय यात्रा आरम्भ कर दी।

## वीर भारत आ पहुंचा

कनाडा के ठंडे पर्वतीय प्रदेशों को पार करता हुआ, हिमालय पर्वत





श्रृंखलाओं को लांघता हुआ जंग का वीर अंत में भारत भी आ पहुंचा। तीन महासागरों की लहरों पर यात्रा करता हुआ वह अरब सागर के तट पर बसे नगर बम्बई आ पहुंचा और नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला ने इस अतिथि का यथोचित सत्कार किया।

नौसेना के लिए अपने जहाज़ों के जलमग्न तलों को भयंकर हानि पहुंचाने वाले संक्षारण की समस्या बहुत गम्भीर बन चुकी थी क्योंकि उन पर किए जाने वाले पेन्ट लगातार नौ महीनों तक भी उनकी रक्षा नहीं कर पा रहे थे। यह सच है कि उस समय तक एक प्रतिसंक्षारण पेन्ट विकसित करके नौसेना को दिया जा चुका था, परन्तु वह दो कारणों से संतोषजनक नहीं था। पहला यह कि शुष्क गोदी में जहाज़ लकड़ी के ब्लाकों पर टिका रहता था। इसलिए जहाज़ की कील पर पेन्ट की प्रभावशाली परत चढ़ाना संभव नहीं हो पाता था। दूसरा यह कि पेन्ट तो सागरीय पर्यावरण और धातु की सक्रिय सतह के बीच एक भौतिक अवरोध मात्र ही होता था। इसलिए उस अवरोध का हर तरह पूर्ण होना बहुत जरूरी था। परन्तु प्रतिसंक्षारण पेन्ट का लेप करने से पूर्व सतह को जिस पूर्णता से तैयार किया जाना चाहिए वह पूर्णता कभी नहीं आती। इसके परिणामस्वरूप पेन्ट की एक सी परत चढ़ा दी जाने पर भी जहाज़ की सतह पर ऐसे अनेक सूक्ष्म क्षेत्र रह जाते थे, जहां पहले संक्षारण के अवशेष मौजूद होते थे। इन क्षेत्रों में पेन्ट की परत अधिक तेजी से विघटित हो जाती थी और संक्षारण अधिक मात्रा में होता था। इस प्रकार प्रतिसंक्षारण पेन्ट प्रभावी तो होता था, पर एक हद तक ही क्योंकि वह ऐसे क्षेत्र बचा देता था जो संक्षारण के प्रति अत्यंत संवेदनशील होते थे।

गहन अध्ययनों के बाद नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला ने जहाज़ पर प्रतिसंक्षारण पेन्ट का लेप करने के साथ उसे कैथोडीय सुरक्षा भी प्रदान करने का निश्चय किया। केवल ऐसा ही करने से समस्या हल हो सकती थी। भारतीय जहाज़ों के लिए कैथोडीय सुरक्षा प्रदान करने हेतु समुचित सामग्री का पता लगाने के लिए तीन धातुओं



पर परीक्षण किए गए। ये धातुएं थी—मैग्नीशियम, जस्ता और एल्यूमीनियम। इनसे बने एनोडों पर परीक्षण किए गए। ब्रिटिश नौसेना जस्ता एनोडों का उपयोग करती थी। इसलिए उन्हें आयात किया गया। विकास के प्रथम चरण में “सी-सेन्ट्री” जैसे सुन्दर नाम वाले एनोड हारबर क्राफ्टों में लगाए गए। इनके साथ ही प्रयोगशाला में मैग्नीशियम और एल्यूमीनियम के एनोडों पर भी विस्तृत अध्ययन किए गए।

मैग्नीशियम एनोड देश में ही ढाले गए। ऐसा करना इसलिए जरूरी था क्योंकि मैग्नीशियम एनोडों की ढलाई में विशेष सावधानी बरतनी पड़ती है। सर्वप्रथम एनोड निर्माण के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले मैग्नीशियम को अत्यधिक शुद्ध होना चाहिए, परन्तु भारतीय उद्योगों के पास व्यावसायिक रूप से उपलब्ध मैग्नीशियम को शुद्ध करने की अथवा लौह अपद्रव्यों से मुक्त मैग्नीशियम धातु तैयार करने की तकनीकी क्षमता नहीं थी। लौह अपद्रव्य एनोड की प्रभावशीलता घटाने के साथ ही स्वयं एनोड में भी अवांछित स्थानीय संक्षारण धाराएं उत्पन्न कर देते हैं। पर एल्यूमीनियम के साथ ऐसी समस्याएं नहीं होती। एल्यूमीनियम को न तो आयात करना पड़ता है और न ही उसके शुद्धिकरण के लिए किसी ऐसी विशिष्ट तकनीक की आवश्यकता होती है जो भारत में उपलब्ध न हो।

## एल्यूमीनियम की शक्ति का एहसास

भारत में बाक्साइट, जिससे एल्यूमीनियम निष्कर्षित किया जाता है, के बड़े भंडार हैं। भारतीय एल्यूमीनियम उद्योग में ऐसी क्षमता है कि वह नौसेना में उपयोग के लिए 99.9 प्रतिशत शुद्धता वाले एल्यूमीनियम का उत्पादन कर सके। धातु की आसान उपलब्धि और उसकी वांछित मिश्रधातु बनाने की आवश्यक सुविधाओं की उपलब्धि ने एल्यूमीनियम को भारतीय परिस्थितियों में सहज ही बलि करने योग्य एनोड बनाने हेतु सर्वश्रेष्ठ पदार्थ बना दिया।



नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला ने नौसेना गोदी की मदद से एल्यूमीनियम की अनेक मिश्रधातुओं से एनोड तैयार किए। इस बारे में नौसेना गोदी के ढलाई विभाग ने पूर्ण सहयोग दिया। उसने वैज्ञानिकों के सुझावों के अनुसार सब प्रकार की एल्यूमीनियम मिश्रधातुओं से तुरंत ही एनोड ढाल दिए। इस प्रकार उपभोक्ता (नौसेना गोदी) और निर्माता (प्रयोगशाला) दोनों ने बढ़िया सहयोग और समन्वय का प्रदर्शन किया। इसके इसके साथ तीनों धातुओं—जस्ता, मैग्नीशियम और एल्यूमीनियम के एनोडों के तुलनात्मक परीक्षण किए गये। इनमें पाया गया कि नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला द्वारा विकसित एल्यूमीनियम मिश्र धातु के एनोड जस्ता और मैग्नीशियम के एनोडों से, जिनका उपयोग अन्य देशों में बहुतायत से किया जाता है, किसी भी प्रकार से कम नहीं हैं। वास्तव में एल्यूमीनियम के एनोड के साथ एक अतिरिक्त लाभ यह भी है कि वह अन्य दोनों धातुओं के एनोडों से हल्का होता है। इस बात को ध्यान में रखने पर कि एक मध्यम आकार के जहाज़ (14000 वर्गफुट क्षेत्रफल) के लिए औसतन 60 एनोडों की आवश्यकता होती है, एनोड का हल्का होना उसका एक महत्वपूर्ण गुण है। जहाज़ के वजन में कमी होने से ईंधन की खपत में भी बचत होती है। इसलिए भारत में जहाज़ों की तथा गहरे सागरों में बनायी जाने वाली इमारतों की रक्षा करने के लिए एल्यूमीनियम एनोडों का ही बहुतायत से उपयोग किया जाता है। अब सर्वशक्तिमान एल्यूमीनियम ही शक्तिशाली भारतीय नौसेना की रक्षा करता है।

## शक्ति और सुरक्षा

जब दो धातुओं को आपस में जोड़ दिया जाता है, तब गैल्वेनिक धारा उत्पन्न हो जाती है। हर धातु एक विभव दर्शाती है। इस विभव को एक मानक इलेक्ट्रोड के संदर्भ में मापा जा सकता है। समुद्री पानी में खुले परिपथ में इस्यात का विभव चांदी/सिल्वर क्लोराइड इलेक्ट्रोड के संदर्भ



चित्र 24. एल्यूमीनियम एनोड से सुरक्षित जहाज़ का भाग

में - 750 मिली वोल्ट पाया गया है, जबकि मानक कैलोमल इलेक्ट्रोड के संदर्भ में रक्षी विभव (प्रोटेक्शन पोटेंशियल) (- 850) मिली वोल्ट। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हर कीमत पर विभवों के इस स्तर को बनाए रखा जाए। यदि विभव के मान अधिक ऋणात्मक हो जाते हैं, तब संरचना की रक्षा एनोड की कीमत पर होती है। साथ ही, उत्पन्न होने वाली धारा का उच्चतर घनत्व आवश्यकता से अधिक सुरक्षा प्रदान करने के दौरान इस्पात इलेक्ट्रोड पर अधिक क्षारीय आयन उत्पन्न कर सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप जहाज़ की सतह पर चढ़ाई गई पेन्ट की परत क्षार में घुल सकती है।



विभवों के मानों के कम ऋणात्मक हो जाने से संरचना की सुरक्षा में कमी आ सकती है। इसका अर्थ है जहाज़ों का संक्षारण से पीड़ित हो जाना। इस्पात की संरचना की रक्षा करते समय एनोड और कैथोड के बीच धारा उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार यह अनुमान लगाया गया है कि एक वर्ग फुट का जस्ता एनोड हाल ही में पेन्ट की गई 800 वर्ग फुट सतह की रक्षा के लिए पर्याप्त होता है। परन्तु यही एनोड उस सतह के, जिस पर पेन्ट हुए एक वर्ष बीत चुका है, इससे केवल आधे क्षेत्र की ही रक्षा कर पाता है। इस बारे में यह मान लिया गया था कि सतह पर विनाइल प्रतिसंक्षारण पेन्ट का ही लेप किया गया था। यदि लेप किसी और पेन्ट से किया गया हो तब इन मानों में अंतर आ जाएगा। इस प्रकार संरचना की परिस्थिति के अनुसार भी धारा घनत्व बदलता रहता है। जब जहाज़ यात्रा कर रहा होता है, तब सतह की रक्षा के लिए अधिक धारा की जरूरत होती है।

एल्यूमीनियम एनोड की सुरक्षा करने की क्षमता का हिसाब लगाने पर पाया गया कि वह प्रति वर्ग फुट क्षेत्र के लिए एक से चार मिली एम्पीयर तक होती है। इस प्रकार एक मध्यम आकार वाले जहाज़ के, जो बंदरगाह पर लंगर डाले खड़ा हो, 14000 वर्ग फुट क्षेत्र की रक्षा करने के लिए 35-40 एम्पीयर का धारा घनत्व चाहिए। दूसरे शब्दों में मध्यम आकार के एक सामान्य जहाज़ की रक्षा के लिए एल्यूमीनियम के 52 एनोडों की, जिनमें से प्रत्येक का वज़न 10.5 किलोग्राम हो, आवश्यकता होगी। ये एनोड उस जहाज़ की दो वर्ष सात महीनों तक रक्षा कर सकते हैं। इसी कार्य के लिए जस्ता और मैग्नीशियम के भी इतने ही एनोडों की जरूरत होती है, पर इन एनोडों का वज़न 25 किलोग्राम प्रति एनोड होता है। इस प्रकार जहाज़ पर बोझ बहुत बढ़ जाता है।

कैथोड की रक्षा करते हुए एनोड का पदार्थ घुल जाता है। प्रयोगों में पाया गया है कि प्रति 1000 वर्ग फुट सतह की रक्षा करने में मैग्नीशियम और जस्ता दोनों के 60-60 किलोग्राम के एनोड घुल जाते हैं, जबकि



एल्यूमीनियम के केवल 20 किलोग्राम के एनोड ही घुलते हैं। नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला वर्ष 1972 तक नौसेना की जहाज़ों के 4,91,610 वर्ग फुट जलमग्न सतह की रक्षा कर चुकी थी। जंग के वीरों ने सुरक्षा प्रदान करने की जो क्षमता उसे प्रदान की उसने भारतीय नौसेना के लड़ाकू बेड़े की प्रहारक शक्ति में अत्यधिक वृद्धि की है।

### सुरक्षा के लिए पंचयंत्र

पंडित विष्णु शर्मा ने राजा के पुत्रों को कूटनीति के पांच प्रसिद्ध सिद्धांत अर्थात् पंचतंत्र की शिक्षा दी थी। इनके फलस्वरूप वे बिना किसी अड़चन के जीवन व्यतीत कर सके। संक्षारण का समुचित रूप से मुकाबला करने के लिए भी पंचयंत्र—पांच यंत्रों या तकनीकों—का उपयोग करना पड़ता है। सुरक्षा के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले पंचयंत्र, सामूहिक रूप से, आरोपित धारा कैथोडीय सुरक्षा व्यवस्था (इम्प्रेस्ड करंट कैथोडीक प्रोटेक्शन सिस्टम) कहलाते हैं। यह व्यवस्था जहाज़ों और जलमग्न सतहों के कैथोडीय सुरक्षा व्यवस्था के विकास की चरम सीमा है। यह व्यवस्था उस जहाज़ को जो सागर पर निरंतर यात्रा करते रहते हैं, पंद्रह से बीस वर्ष तक सुरक्षा प्रदान कर देती है।

पहले जिस गैल्वानिक एनोड व्यवस्था की चर्चा की गई है, उसने कैथोडीय सुरक्षा के कुछ प्राथमिक सिद्धांतों को ज्ञात करने में मदद दी है। सुरक्षा प्रक्रिया के दौरान एनोड और कैथोड के बीच एक धारा स्वतः उत्पन्न हो जाती है जिसे अत्यंत सरल भाषा में सागर के पानी में कार्य करने वाला बैटरी सैल कहा जा सकता है। इस सैल द्वारा उत्पन्न होने वाली ऊर्जा का भंडारण मोटर कार या ट्रकों को चलाने के लिए नहीं किया जाता वरन् जहाज़ों के इस्पात के पेटे को सुरक्षा प्रदान करने के लिए किया जाता है। यह सुरक्षा उस सतह के हर वर्ग मीटर पर, जिस पर



पेन्ट का लेप चढ़ाया गया हो, 15-35 मिली एम्पीयर धारा आरोपित करके प्रदान की जाती है।

परन्तु जैसा कि हर बैटरी व्यवस्था में होता है, ऊर्जा उत्पन्न करने में एनोड घुल जाता है। एनोड के एक बार समाप्त हो जाने पर संरचना को सुरक्षा मिलनी बंद हो जाती है और संक्षारण की प्रक्रिया पुनः आरम्भ हो जाती है। उस समय जहाज को नए एनोड लगाने के लिए शुष्क गोदी में लाना जरूरी होता है। इस प्रकार एनोड के नवीनीकरण पर निरंतर खर्च होता रहता है। इसके अतिरिक्त एनोडों पर आरोपित की जाने वाली धारा एनोड के पदार्थ पर निर्भर होती है। उस पर मानव का कोई नियंत्रण नहीं होता। इस प्रकार के एनोडों को फिट करने से जहाज के बोझ में होने वाली वृद्धि न केवल जहाज के घर्षणीय कर्षण (फ्रिक्शनल ड्रैग) को बढ़ाती है वरन् उसके ध्वनि स्तर में भी बढ़ावा करती है, जो एक युद्धक जहाज के लिए अवांछित गुण है। एक सुन्दर, चपल पोत के बारे में नौसेना के वास्तुशिल्पी की कल्पना इन बदसूरत घुल जाने वाले मैग्नीशियम, जस्ता और एल्यूमीनियम के एनोडों की मौजूदगी से चकनाचूर हो जाती है।

इन दोषों ने नये किस्म की कैथोडीय सुरक्षा व्यवस्था के विकास की प्रेरणा दी जिसमें धारा को कैथोड पर कृत्रिम रूप से, वांछित स्तर पर आरोपित किया जाता है। इसमें एनोड प्लेटिनम जैसे अक्रिय (इनर्ट) पदार्थ का, जो उपयोग के दौरान घुलता नहीं है, बनाया जाता है। अनेक देशों ने प्लेटिनमीकृत टाइटेनियम से भी एनोड बनाने के प्रयोग किए हैं। परन्तु हमें ऐसे एनोड बनाने के लिए प्लेटिनम आयात करना पड़ेगा और इस प्रकार एनोड की लागत बहुत अधिक हो जाएगी।

नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला हमेशा से ही देश में आसानी से उपलब्ध पदार्थों को इस्तेमाल करने हेतु प्रयत्नशील रही है। गहन अध्ययनों के बाद यह पाया गया कि सीसे, चांदी और एन्टिमनी की एक मिश्रधातु प्लेटिनम के समतुल्य ही कार्य करती है। इस बारे में यह



उल्लेखनीय है कि एल्यूमीनियम की भांति चांदी भी देश में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है और संकटकाल के दौरान उसकी सप्लाई कम हो जाने की कोई आशंका नहीं है।

शीघ्र ही उक्त प्रयोगशाला के परिणामों के अनुसार, जहाजों की सुरक्षा के लिए एनोड बनाए जाने लगे हैं। प्रयोगशाला में विकसित सम्पूर्ण आरोपित धारा कैथोडीय सुरक्षा व्यवस्था पांच यंत्रों पर निर्भर है। ये पांच यंत्र हैं सुरक्षा के पंचयंत्र। आगे इस पांच यंत्रों के संक्षिप्त विवरण दिए जा रहे हैं। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि इनमें से एक की भी अनुपस्थिति से पूरी व्यवस्था ही बिगड़ जाती है।

### यात्रा के लिए यंत्र

उक्त व्यवस्था की यह प्रथम और सबसे आवश्यक शर्त है कि यात्रा का वाहन (जहाज) स्वयं ही व्यवस्था में कैथोड के रूप में कार्य करे। जहाज का पेन्दा विभिन्न इलेक्ट्रोडों के साथ भिन्न-भिन्न विभव दर्शाता है। चांदी/सिल्वर क्लोराइड इलेक्ट्रोड - 800 मिलीवोल्ट रक्षी विभव दर्शाता है जबकि जस्ता-इलेक्ट्रोड + 250 मिली वोल्ट विभव। इन दोनों इलेक्ट्रोडों के लिए संक्षारक विभव (कोरोडिंग पोटेंशियल) क्रमशः -600 मिली वोल्ट और + 450 मिली वोल्ट होते हैं। यह बढ़िया प्रतिसंक्षारण पेन्ट से पुती जहाज हेतु रक्षी विभव प्राप्त करने के लिए 15-35 मिली एम्पीयर प्रति वर्ग मीटर की धारा चाहिए। इस प्रकार प्रभावी सुरक्षा के लिए यात्रा यंत्र अर्थात् जहाज पर प्रति वर्ग मीटर 15 से 35 मिली एम्पीयर की धारा आरोपित करने की जरूरत होती है।

### (ii) रक्षा के लिए यंत्र

संक्षारण से रक्षा करने वाला यंत्र-रक्षक है नया सीसा-चांदी-एन्टीमनी का एनोड। कैथोडीय सुरक्षा व्यवस्था के विपरीत इस नई व्यवस्था में बहुत कम एनोडों की जरूरत होती है। सामान्य आकार की एक जहाज की





रक्षा करने के लिए कैथोडीय सुरक्षा व्यवस्था में स्वयं की बलि देने वाले 52 एल्यूमीनियम एनोडों की जरूरत होती थी जबकि नई व्यवस्था में केवल 2 अक्रिय एनोडों की आवश्यकता होती है। नये एनोडों में से प्रत्येक का वजन 20 किलोग्राम होता है और इन्हें पेन्टों में से बाहर निकलते हुए व्यवस्थित किया जा सकता है। इस प्रकार जहाज़ पर सामान तो लदा होता है पर जहाज़ का बोझ नहीं बढ़ता। इसलिए उसे घसीटना नहीं पड़ता।

परन्तु, इस रक्षक यंत्र को बड़ी मात्रा में 35 से 40 एम्पीयर की धारा चाहिए। इसलिए उसे भलीभांति विद्युत्‌रोधी बनाना जरूरी होता है, जिससे वह जहाज़ की धातु के सम्पर्क में न आने पाए। ऐसा करने के लिए एनोडों के इर्द-गिर्द के क्षेत्र पर फाइबर ग्लास का परावैद्युत (डायइलेक्ट्रिक) कवच चढ़ा दिया जाता है। इस प्रकार अब हमारे जंग के वीर को न केवल हथियार मिल गये, वरन् कवच भी मिल गया।

### (iii) मध्यमा

उस अनोखे वीर, भीम की भांति जिसका पांडवों में मध्य स्थान था, संदर्भ अथवा मध्यमा यंत्र भी जहाज़ के मध्य में स्थित होता है। यह सुरक्षा व्यवस्था का संदर्भ इलेक्ट्रोड होता है और इसे हमेशा ही जहाज़ के मध्यम क्षेत्र में रखा जाना चाहिए, जहां आवेश के चालन के लिए पानी सदैव उपलब्ध रहता है। इस संदर्भ इलेक्ट्रोड का कार्य होता है पेन्डे के विभव (हल पोटेंशियल) को मापना, उस पर नियंत्रण रखना और उसे नियमित करना।

संसार के लगभग सब देश चांदी/सिल्वर क्लोराइड इलेक्ट्रोड को संदर्भ इलेक्ट्रोड की भांति इस्तेमाल करते हैं। इसकी संरचना नाजुक होती है और इसलिए यह चोट आदि के प्रति अधिक संवेदनशील होता है। इसलिए नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला ने इस इलेक्ट्रोड के स्थान पर अन्य अधिक मजबूत इलेक्ट्रोड विकसित करने के बारे में



प्रयोग किए और उनके परिणामस्वरूप, अब चांदी/सिल्वर क्लोराइड के इलेक्ट्रोड के स्थान पर जस्ता इलेक्ट्रोड इस्तेमाल किया जा सकता है। जस्ता संदर्भ इलेक्ट्रोड उच्च शुद्धता के जस्ता से बना होता है और भीम की भांति बहुत शक्तिशाली होता है। मध्यमा इस सम्पूर्ण सुरक्षा व्यवस्था का दिल होता है।

#### (iv) शक्ति के लिए यंत्र

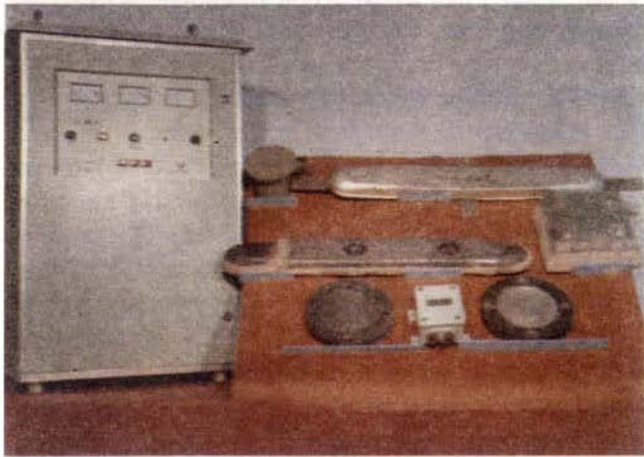
नष्ट हो जाने वाली एनोड व्यवस्था में एनोड और कैथोड को आपस में सम्पर्क में आते ही धारा स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है। पर नई व्यवस्था में ऐसा नहीं होता। यहां व्यवस्था को शक्ति (धारा) किसी बाह्य स्रोत से देनी पड़ती है। इस व्यवस्था के लिए दिष्ट धारा (डायरेक्ट करंट-डी.सी.) की आवश्यकता होती है न कि प्रत्यावर्ती धारा (आल्टरनेटिंग करंट - ए.सी.) की, जो सामान्यतः जहाज में उपलब्ध होती है। परिणामस्वरूप यह दिष्ट धारा बैटरियों से प्राप्त की जाती है अथवा प्रत्यावर्ती धारा को दिष्ट धारा में परिवर्तित कर लिया जाता है। एक बार एनोड, कैथोड और संदर्भ इलेक्ट्रोड के सब अंगों को भलीभांति फिट करके उन्हें आपस में एक दूसरे तथा विद्युत सप्लाय यूनिट से जोड़ दिया जाता है, तब यूनिट से धारा प्रवाहित होने लगती है। जहाज के तले और प्रोपेलरों की रक्षा के लिए उच्च धारा की जरूरत होती है और यह विद्युत सप्लाय यूनिट द्वारा प्रदान की जाती है। यह जरूरी है कि यह यूनिट धारा के रूप में लगातार शक्ति प्रदान करती रहे। इस प्रकार शक्ति प्रदान करने वाला यंत्र नई व्यवस्था को चालू रखने वाली प्रमुख युक्ति होती है।

#### (v) नियंत्रण के लिए यंत्र

रक्षा विभव का नियंत्रण ही नई व्यवस्था का मुख्य ध्येय है। कैथोडीय सुरक्षा व्यवस्था का अंतिम चरण होता है कैथोड को ही जाने वाली शक्ति का नियंत्रण करना। जस्ता संदर्भ इलेक्ट्रोड का काम है पेन्डे पर मौजूद



विभवों के बारे में प्रतिपुष्टि (फीडबैक) देना और नियंत्रण इकाई का उत्तरदायित्व है स्रोत से शक्ति की सप्लाई का नियमन। आवश्यकता से अधिक धारा उच्च वोल्टता उत्पन्न कर देगी जिससे समुद्री पानी का विद्युत अपघटन (इलेक्ट्रोसिसिस) होने लगेगा और क्लोरीन मुक्त होने लगेगी। यह क्लोरीन एनोड के लिए हानिकारी हो सकती है। इसके विपरीत वेन्डे की पूरी तरह रक्षा न होने पर संभारण वातावरण उत्पन्न हो सकता है। नियंत्रण यंत्र का कार्य है एनोड को प्रदान की जाने वाली धारा का नियंत्रण।



चित्र 25. पंचयंत्र के मुख्य अंग

नीसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला ने एक ऐसे नियंत्रण यंत्र का विकास किया है जो स्वतः चल सकता है, पर मीका पड़ने पर उसे हाथ से भी चलाया जा सकता है। इस यंत्र को जहाज पर ऐसी जगह

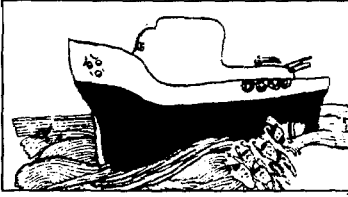


लगाया जाता है जहां हर व्यक्ति को यह तुरंत पता चल सकता है कि पानी के अंदर क्या क्रिया हो रही है।

इन पंचयंत्रों से युक्त आरोपित धारा कैथोडीय सुरक्षा व्यवस्था को अब तक अनेक नौसैनिक जहाजों पर लगाया जा चुका है। यद्यपि उन्हें स्थापित किए हुए दस वर्ष से अधिक समय हो गया है पर वे अब भी भलीभांति कार्य कर रहे हैं।

इस प्रकार जंग का वीर निरीहों और कमजोरों की रक्षा कर रहा है। अब भारत के बृहत तट पर जहाज निर्भय होकर विचरण कर रहे हैं। अब वे संकट में नहीं हैं। जंग का वीर अपने वीरतापूर्ण कार्यों के लिए अधिक प्रसिद्ध है अपनी शकल के कारण कम। वह जहाज के पेन्डे के नीचे, जहां यात्रा के दौरान स्थित जिसे न आप देखते हैं और न मैं। इस वीर को वहीं रहने दीजिए जिससे वह संक्षारण से जहाज की रक्षा कर सके।

बार्नेकल से  
जंग जारी  
है...



इस्पात जहाजों के आगमन के पहले सागर में हानि पहुंचाने वाले कारकों के मुख्य लक्ष्य काष्ठ की नौकायें होती थीं। कोलम्बस को अपनी एक यात्रा ही इसलिये रद्द कर देनी पड़ी थी क्योंकि उसके जहाज़ी बेड़े के तल को "शत्रु" ने नष्ट कर दिया था। वर्तमान इतिहासकारों को यह ज्ञात नहीं है कि इसमें उन्हें कितनी हानि हुई थी, परन्तु तथ्य यह है कि अमेरिका की खोज के लिए उन्हें अपने साधनों को फिर से जुटाना पड़ा था। उन्हें समय और साधनों की हानि के रूप में जो नुकसान पहुंचा वह बहुत अधिक था।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में एक दिन सेनफ्रांसिसको, संयुक्त राज्य अमेरिका में एक पुल टूटकर गिर पड़ा। उसकी वजह भी ये समुद्री युद्धक जीव थे। पुल को फिर से बनाना पड़ा। पर उसके नष्ट होने से हुई हानि कभी नहीं लगायी गई। इस प्रकार जहाजों के इस दुश्मन द्वारा किये गये नुकसान की अनेक वारदातों का कोई रिकार्ड नहीं रखा गया पर निश्चय ही वे काफी अधिक होंगी। कुछ वर्षों पूर्व से ये आंकड़े रखे जाने लगे हैं।

युद्ध पोतों पर बार्नेकल का पहला और सबसे प्रमुख प्रभाव होता है



ईंधन की खपत में वृद्धि। इसके कारण, घर्षण में वृद्धि से लेकर, जहाज़ के बोझ में वृद्धि तक, अनेक हो सकते हैं। जहाज़ के ईंधन की खपत में वृद्धि होने से निश्चय ही जहाज़ी कम्पनियों के ईंधन बिलों में वृद्धि हो जाती है। इस बारे में नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला ने जो अनुमान लगाए हैं उसके अनुसार बढ़ा हुआ ईंधन खर्च 250 करोड़ रुपये प्रति वर्ष तक हो सकता है।

पश्चिमी देशों ने अपने महत्वपूर्ण प्रचलित और नाभिकीय बिजलीघरों को परिदूषण से होने वाली हानियों का अनुमान लगाया है। अब हमारे देश में भी ऐसे अनुमान लगाए जाने लगे हैं। वैसे मद्रास के निकट स्थापित किए गए बिजलीघर ने परिदूषण का मुकाबला करने हेतु नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला से परामर्श करने की दूरदर्शिता दिखाई थी। इस बारे में इस प्रयोगशाला ने समुद्री पानी की, स्थिर और गतिशील, दोनों स्थितियों में परिदूषक जीवों को सतहों पर अड्डा जमाने से रोकने हेतु प्रभावशाली जैवविषों के बारे में गहन अध्ययन किए। इनके आधार पर प्रयोगशाला ने जो उपाय सुझाए उन्होंने अब तक बार्नेकलों को हावी होने से रोक रखा है। उक्त बिजलीघर पिछले सात वर्षों से उस सागर में सुरक्षित खड़ा है जहां मसल, बार्नेकलों और ट्यूबवर्मों की बहुतायत है।

लड़ाकू बार्नेकल और कैसर सदृश्य उनके सहयोगी संक्षारण ने मिलकर विभिन्न देशों को भारी नुकसान पहुंचाया है। उन अनेक क्षेत्रों में जहां बार्नेकल की सेनायें कार्यरत नहीं हैं, जंग के वीर ने अकेले ही बड़ी वीरता से शत्रु का मुकाबला किया है। धातुओं के समुद्री संक्षारण को बड़े पैमाने पर नियंत्रित किया जा चुका है और उससे होने वाली हानि का हिसाब लगाया जा चुका है। अधिकारिक तौर पर यह घोषणा की जा चुकी है कि समुद्री संक्षारण से देश को प्रति वर्ष 1500 करोड़ रुपये की हानि होती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान जैसे औद्योगिक देशों में होने



वाली हानि क्रमशः 6000 खरब डालर और 92 खरब डालर है। आस्ट्रेलिया में यह हानि 47 करोड़ डालर और ब्रिटेन में 60 करोड़ पाँड है। रूस संक्षारण का मुकाबला करने के लिए प्रति वर्ष 6 करोड़ रूबल खर्च करता है। इन औद्योगिक देशों की तुलना में जंग को रोकने के लिए भारत केवल 4000 करोड़ रुपये खर्च करता है। इस राशि का अधिकांश भाग समुद्री संक्षारण की रोक पर खर्च होता है। अगर संक्षारण बहुत महंगा पड़ता है तो सुरक्षा की तकनीक भी सस्ती नहीं है। पर अब जलमग्न संक्षारण को आरोपित धारा कैथोडीय सुरक्षा व्यवस्था द्वारा प्रभावशाली ढंग से नियंत्रित किया जा चुका है। यह एक सस्ती तकनीक है। इससे एक जहाज़ की संक्षारण से रक्षा करने पर औसत केवल 10 से 20 हजार रुपये प्रति वर्ष ही खर्च होते हैं।

परन्तु प्रतिदूषक पेट्रोल टैक्नोलॉजी इस प्रकार की किसी उपलब्धि का दावा नहीं कर सकती। जहाज़ों को शुष्क गोदी में बार-बार लाने के समय अंतरालों में बढ़ोत्तरी हो जाने के बावजूद भी परिदूषण हटाने की लागत बहुत अधिक आती है। उस लागत का मुख्य भाग परिदूषक जीवों को हटाने के लिए लगाए गए लोगों की मजदूरी पर खर्च होता है। इस बारे में अनुसंधान हो रहे हैं और नई तकनीक तेजी से विकसित की जा रही है। पर जब तक प्रतिसंक्षारण तकनीक जैसी कोई दीर्घ अवधि वाली सुरक्षा व्यवस्था विकसित नहीं हो जाती तब तक बार्नेकल हमारे राष्ट्र के महत्वपूर्ण साधनों को निगलते रहेंगे।

उस भयंकर दुश्मन बार्नेकल के साथ युद्ध, एक सीमा तक ही जीता जा सकता है। अपनी अपार संख्या और अनुकूलन तकनीकों के फलस्वरूप वे मानव द्वारा विकसित टैक्नोलॉजी को परास्त कर देते हैं। कदाचित् बार्नेकल के रूप में मनुष्य को अपना सही प्रतिद्वंदी मिल गया है, जो अपनी रणनीति में, उसके विफल बनाए जाने के पूर्व ही, संशोधन कर लेता है। बार्नेकल से सदियों से युद्ध चल रहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि वह इक्कीसवीं सदी और उसके बाद भी चलता रहेगा...

सागर के अन्दर की दुनिया काफी रोचक है जहां छोटे-बड़े और अनेक किस्मों के जीव-जन्तुओं एवं पौधों की भरमार है। बार्नेकल, बैक्टीरिया, मसल, ओएम्टर, ट्यूबवर्म, वगैरह ऐसे ही सूक्ष्म जीव हैं जो मानवनिर्मित संरचनाओं जैसे जलयान, युद्धपोत इत्यादि की तली से चिपककर उसे अपना घर बना लेते हैं जिससे इन संस्थाओं को भारी नुकसान पहुंचता है। इस घटना को परिदूषण कहते हैं। इसे प्रभावहीन करने के लिए सागर के अन्दर रहने वाले सूक्ष्म जीवों के विरुद्ध मानव का संग्राम सदियों से चल रहा है। ऐसा ही संग्राम संक्षारण के विरुद्ध भी जारी है क्योंकि इसका सभी धातुओं पर सीधा आक्रमण होता है। अपने देश में मात्र संक्षारण से ही 1500 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष की हानि उठानी पड़ती है। परिदूषण और संक्षारण से हानि और सुरक्षा की नवीनतम तकनीकों के विकास की कहानी को सरल व गैर तकनीकी भाषा में लेखक ने पाठकों के सामने रखा है।

इस पुस्तक के लेखक श्री स सि गंटी, नौसेना रासायनिक तथा धातुकर्मीय प्रयोगशाला, बंबई में वैज्ञानिक हैं जहां परिदूषण और संक्षारण से सुरक्षा के लिए अनुसंधान व विकास कार्य किए जा रहे हैं।